श्रेणी ५- हिन्दी

अनुक्रमणिका

	अंक	पृष्ठ क्रमांक
सूत्र	30	1 से 20
तत्व विभाग - संस्कार विभाग	50	21 से 60
कथा विभाग	10	61 से 73
काव्य विभाग	10	74 से 81

अभ्यासक्रम : श्रेणी 5

पृष्ठ

1. सूत्र विभाग - गुण 30

1. संपूर्ण सामायिक, प्रतिक्रमण सूत्र पाठ, अर्थ, प्रश्नोत्तर, पुनरावर्तन
2. प्रतिक्रमण: नववे व्रत के पाठ से मांगलिक तक के पाठ के अर्थ और प्रश्नोत्तर

2. तत्व विभाग / संस्कार विभाग - गुण 50

1. कर्म प्रकृति, कर्म स्वरूप और कर्म की अवस्था (गुण 25)
2. छह आरे के भाव (कालचक्र) (गुण 20)
3. पू. साधु– साध्वीजी को गौचरी बहेराने की समझ और सचेत अचेत की समझ (गुण 05)

3. कथा विभाग - गुण 10

1.भगवान ऋषभदेव
2. कामदेव श्रावक
3. दो कछुए

4. काव्य विभाग - गुण 10

1. साधु वंदना (1 से 77 कडी)

प्रतिक्रमण पाठ 14 : सामायिक व्रत

प्र-1 : साधु की और श्रावक की सामायिक में क्या अंतर है?

उ-1 : (1) साधु की सामायिक आजीवन होती है, जबकि श्रावक की सामायिक कुछ समय (जैसे दो घड़ी, चार घड़ी आदि) के लिए होती है।

(2) साधु की सामायिक 3 करण और 3 योग, इस प्रकार 9 कोटि से ली जाती है। जबकि श्रावक की सामायिक सामान्यतः 2 करण और 3 योग से यानी 6 कोटि से या 8 कोटि से ली जाती है।

अपेक्षित प्रश्नः

1. सावद्य योग किसे कहते हैं?
2. नववे व्रत के अतिचार कितने होते हैं? कौन-कौन से?
3. सामायिक कितने प्रकार की होती है?
4. पहला शिक्षाव्रत कौन-सा है?

प्रतिक्रमण पाठ 15 : देशावगासिक व्रत

प्र-1 : देशावगासिक व्रत किसे कहते हैं?

उ-1 : पहले लिए गए सभी व्रतों में जो मर्यादाएँ आजीवन के लिए ली थीं, उन्हें संक्षिप्त करके और भी अधिक मर्यादा प्रतिदिन के लिए लेना - देशावगासिक व्रत कहलाता है।

प्र-2 : वर्तमान समय में यह व्रत संक्षेप में किस प्रकार किया जाता है?

उ-2 : वर्तमान में यह व्रत चौदह नियमों के रूप में किया जाता है:

1. सचेत खाए-पिए जाने वाली वस्तुओं की मर्यादा।
2. कुल खाद्य-पेय द्रव्यों की मर्यादा।
3. विगय -दूध, दही, घी, तेल, गुड़, चीनी, मिठाई आदि की मर्यादा।
4. स्नान - स्नान की संख्या और उसमें उपयोग किए जाने वाले जल की मर्यादा।
5. जूते/चप्पल आदि की संख्या की मर्यादा।

6. दिशा - चारों दिशाओं में आवागमन की मर्यादा।
7. शयन- सोने-बैठने हेतु पलंग, सोफ़ा, कुर्सी आदि की मर्यादा।
8. ब्रह्मचर्य- यथाशक्ति पालन करना।
9. कुसुम- फूल और सुगंधित द्रव्यों की मर्यादा।
10. विलेपन- शरीर पर लगाने वाले क्रीम, पाउडर, तेल आदि की मर्यादा।
11. वाहन- उपयोग में लिए जाने वाले वाहनों की संख्या की मर्यादा।
12. वस्त्र- प्रतिदिन उपयोग में लिए जाने वाले वस्त्रों की मर्यादा।
13. भोजन- दिन में कितनी बार और कितना आहार लेना है, उसकी मर्यादा।
14. मुखवास- मुखवास के कितने प्रकार और कितनी मात्रा उपयोग करनी है, उसकी मर्यादा।

उपर्युक्त धारणा के अनुसार पच्चक्खाण के शब्द: दुविहं, तिविहेणं, न करेमि, न कारवेमि, मणसा, वयसा, कायसा, तस्स भंते, पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि, अप्पाणं वोसिरामि।

प्र-3 : छठे व्रत और दसवें व्रत में क्या अंतर है?

उ-3 : छठे व्रत में दिशा की मर्यादा का आजीवन पच्चक्खण (प्रतिज्ञा) किया जाता है। जबकि दसवें व्रत में केवल एक दिन और एक रात्रि के लिए दिशा तथा भोग-उपभोग की मर्यादा की जाती है।

अपेक्षित प्रश्न:

(1) दशवें व्रत के अतिचार कितने होते हैं? कौन-कौन से?
(2) दशवा व्रत कितनी कोटि से ग्रहण किया जाता है?
(3) एक अहोरात्रि का समय कितना होता है?
(4) मुनि जीवन का अनुकरण करने वाला व्रत कौन-सा है?
(5) दशवा व्रत लेने और समापन की विधि क्या है? (प्रतिक्रमण पुस्तक के आधार पर तैयार करें)
(6) दूसरा शिक्षाव्रत कौन-सा है?

प्रतिक्रमण पाठ 16: परिपूर्ण पौषधव्रत

प्र-1 : पौषधव्रत क्या है?

उ-1 : आत्मा को ज्ञान, दर्शन और चारित्र द्वारा पुष्ट करना – यही पौषधव्रत है।

प्र-2 : प्रतिलेखन और प्रमार्जन क्या है?

उ-2 : वस्त्र आदि उपयोग में आने वाले सभी उपकरणों में कोई जीव है या नहीं, इसका निरीक्षण करना "प्रतिलेखन" है। यदि जीव दिखे तो उसे जतनापूर्वक, हल्के हाथों से पूंजणी या रजोहरण द्वारा सुरक्षित स्थान पर रखना "प्रमार्जन" है।

प्र-3: पौषधव्रत या दशवे व्रत में किन-किन वस्तुओं का प्रतिलेखन/ प्रमार्जन करना चाहिए?

उ-3 : क्रमशः – मुहपत्ती, गुच्छा, रजोहरण, वस्त्र, संथारिया, पौषधशाला, बैठने की भूमि, गोचरी पात्र, पुस्तक आदि सभी उपयोग में ली जाने वाली वस्तुओं का प्रतिलेखन करना चाहिए।

प्र-4 : पौषधव्रत में किन-किन बातों के पच्चक्खाण किए जाते हैं?

उ-4 : चारों प्रकार के आहार, अब्रह्म सेवन न करना, आभूषण और सोना साथ में न रखना, फूलों की माला न पहनना, चंदन आदि का विलेपन न करना, शस्त्र आदि से होनेवाले 18 प्रकार के पापकारक कार्यों का त्याग - इन सभी का पच्चक्खाण किया जाता है।

प्र-5 : प्रहर किसे कहते हैं? पौषधव्रत कितने प्रहर का होता है?

उ-5 : प्रहर अर्थात दिन या रात्रि का चौथा भाग (लगभग से तीन घंटे)। इसे पोरसी भी कहते हैं। पूर्ण पौषध आठ प्रहर का होता है। केवल रात्रि का पौषध चार प्रहर का होता है।

अपेक्षित प्रश्न:

1. यह व्रत कितनी कोटि से ग्रहण किया जाता है?
2. एकादश (11वें) व्रत के अतिचार कितने और कौन-कौन से हैं?
3. 11वां व्रत कितने समय या कितने प्रहर के लिए लिया जाता है?
4. तृतीय शिक्षाव्रत कौन-सा है?

प्रतिक्रमण पाठ 17: अतिथि संविभाग व्रत

प्र-1 : अतिथि संविभाग व्रत क्या है?

उ-1 : गृहस्थ अपने उपयोग की भोजन आदि 14 प्रकार की वस्तुएँ, जिनका आनेका कोई निश्चित समय या तिथि नहीं है, ऐसे पंचमहाव्रती साधु-साध्वियों को केवल आत्मकल्याण की भावना से अर्पित करें- यही अतिथि संविभाग व्रत कहलाता है। हर श्रावक को इस व्रत का लाभ प्राप्त करने की भावना हररोज रखनी चाहिए।

प्र-2 : पाढियारी और अपाढियारी वस्तुएँ किसे कहते हैं?

उ-2 : जिन वस्तुओं को साधु-साध्वी ग्रहण करने के बाद वापिस नहीं करते उन्हें "अपाढियारी" कहते हैं। जिन वस्तुओं को ग्रहण कर अपने ऊपयोग में लेने के बाद लौटा देते हैं - उन्हें "पाढियारी" कहते हैं।

प्र-3 : साधु-साध्वीजी को कितनी वस्तुएँ वहोराई (दी) जा सकती हैं? इनमें पाढियारी और अपाढियारी वस्तुएँ कौन-कौन सी हैं?

उ-3 : साधु-साध्वीजी को 14 प्रकार की वस्तुएँ दी जा सकती हैं।

अपाढियारी वस्तुएँ (8):

1. आहार	3. मेवा-मिठाई	5. वस्त्र	7. कंबल
2. पानी	4. मुखवास	6. पात्र	8. रजोहरण

पाढियारी वस्तुएँ (6):

1. बाजोट, पाटला आदि	3. शय्या, मकान	5. औषध
2. पाट, पाटिया	4. संथारिया	6. भेषज

प्र-4 : औषध और भेषज में क्या अंतर है?

उ-4 : सूंठ, हल्दी, आंवला, हरड़े, लौंग आदि एक-एक द्रव्य को "औषध" कहते हैं। हींगाष्टक चूर्ण, त्रिफला आदि अनेक द्रव्यों से बनी वस्तु को "भेषज" कहते हैं।

प्र-5 : क्या साधु-साध्वीजी को दी जाने योग्य वस्तुएँ केवल 14 ही हैं?

उ-5 : ये 14 वस्तुएँ मुख्यतः साधु-साध्वियों के दैनिक उपयोग में आने वाली होने से इनका उल्लेख किया गया है।

इनके अतिरिक्त धर्म उपयोगी पुस्तकें, सुई, कैंची आदि उपयोगी वस्तुएँ भी

समझनी चाहिए।

प्र-6 : क्या केवल साधु-साध्वी ही दान के सुपात्र हैं?

उ-6 : साधु-साध्वीजी को दान देना "सुपात्रदान" कहलाता है, इसलिए इस व्रत में उसका विशेष उल्लेख किया गया है।

इसके अलावा प्रतिमाधारी श्रावक, व्रती श्रावक, और स्वधर्मी को भी दान दिया जा सकता है।

इनके अलावा दिए जाने वाला दान "अनुकम्पा से दिया गया दान" कहलाता है।

प्र-7 : तीर्थंकर को 14 दान में से कितने और कौन से दान दिए जाते हैं?

उ-7 : तीर्थंकर वस्त्र, पात्र, कंबल और रजोहरण नहीं रखते, इसलिए इन 4 को छोड़कर बाकी के 10 दान उन्हें दिए जा सकते हैं।

प्र-8 : बारहवाँ व्रत धारण करने वाले को मुख्यतः किन बातों का ध्यान रखना चाहिए?

उ-8 : 1. रसोई बनाने वाले और भोजन करने वाले को - सचित्त वस्तुएँ दूर रखकर बैठना चाहिए।

2. घर में सचेत और अचेत वस्तुओं को अलग-अलग रखने की व्यवस्था होनी चाहिए।

3. कच्चे पानी के छींटे, हरी वनस्पति, सब्जी का कचरा - ज़मीन पर फैला न हो।

4. यदि अचेत पानी बनाया हो, तो उसे शाम तक रखना चाहिए।

5. गौचरी के समय घर के दरवाज़े खुले रखने का विवेक रखना चाहिए।

6. स्वयं सूझता हो तो अपने हाथों से वहोराने की उत्कृष्ट भावना रखें।

7. गौचरी विधि की जानकारी साधु-साध्वीजी से प्राप्त कर, उसमें वृद्धि करते रहें।

8. स्वयं सूझते हो या सूझते न हो, जो हो वही सत्य बोलें।

अपेक्षित प्रश्न:

1. करण और कोटि के बिना लिया जाने वाला व्रत कौन सा है?
2. बारहवें व्रत के अतिचार कितने हैं? कौन-कौन से हैं?
3. बारहवें व्रत में किस भावना का चिंतन किया जाता है?
4. चौथा शिक्षाव्रत कौन सा है?

१२ व्रत और संथारा के करण योग और कोटी को समझाता हुआ कोष्टक

व्रत	करण	योग	कोटी	विगत
1	2	3	6	दुविहं, तिविहेणं
2	2	3	6	दुविहं, तिविहेणं
3	2	3	6	दुविहं, तिविहेणं
4	2	3	6	देवता संबंधी, दुविहं, तिविहेणं
	1	1	1	मनुष्य,तिर्यच संबंधी, एगविहं, एगविहेणं
5	1	3	3	एगविहं, तिविहेणं
6	2	3	6	दुविहं, तिविहेणं
7	1	3	3	एगविहं तिविहेणं
8	2	3	6	दुविहं, तिविहेणं
9	2	3	6	दुविहं, तिविहेणं
10	2	3	6	दिशा संबंधी, दुविहं, तिविहेणं
	1	3	3	उवभोग परिभोग संबंधी, एगविहं, तिविहेणं
	1	3	3	एगविहं, तिविहेणं ,द्रव्यादिकनी
11	2	3	6	दुविहं, तिविहेणं
12	0	0	0	करण, कोटी बिना का व्रत
संथारो	3	3	9	तिविहं, तिविहेणं

प्रतिक्रमण सूत्र: पाठ 18: संथारा अनशन

प्र-1 : मरण किसे कहते हैं? इसके मुख्य प्रकार कितने हैं?

उ-1 : आयुष्य कर्म के पूर्ण होने के बाद आत्मा का शरीर से अलग होना या शरीर में से प्राण का निकलना उसे 'मरण' कहते है।

शास्त्रों की अपेक्षा से मरण के दो प्रकार है - **(1) सकाम मरण :** समकित के साथ होनेवाला ज्ञानी का मरण। **(2) अकाम मरण :** मिथ्यात्व के साथ होनेवाला अज्ञानी का मरण।

व्रत की अपेक्षा से मरण के तीन प्रकार है - **(1) बाल मरण :** अविरति जीवों का मरण, **(2) बाल पंडित मरण :** देशविरति श्रावक का मरण, **(3) पंडित मरण :** सर्वविरति साधु का मरण।

प्र-2 : अनशन यानी क्या? संलेखना यानी क्या? संलेखना कब की जाती है?

उ-2 : अनशन यानी यावत् जीवन प्रत्याख्यान पूर्वक आहार-पानी का त्याग करना। बारह प्रकार के तप में प्रथम तप अनशन है।

संलेखना यानी अनशन धारण करने से पहले की पूर्व तैयारी करना। संलेखना अनशन धारण करने से पहले जघन्य 6 महीने और उत्कृष्ट 12 साल पहले कर सकते है। व्यवहार में अनशन के लिए संलेखना या संथारा शब्द का प्रयोग होता है।

प्र-3: संथारा यानी क्या?

उ-3: संथारा यानी अनशन। 3 या 4 प्रकार के आहार का यावत् जीवन [या थोड़े समय] के लिए त्याग करना।

प्र-4: संथारे में कौन-कौन से पच्चक्खान किए जाते है? यह बताते मूल पाठ के शब्द लिखें।

उ-4: संथारे में 18 पाप, 4 आहार और 1 शरीर के त्याग रूप 23 पच्चक्खान किए जाते हैं। मूलपाठ, सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि... से...इमं शरीरं, तक।

प्र-5: संथारे का महत्व क्या है?

उ-5 : संथारा **(1)** श्रावक और साधु का तीसरा मनोरथ है। **(2)** श्रावक का चौथा आश्रय स्थान है। **(3)** पाप का प्रायश्चित है। **(4)** सकाम मरण और पंडित मरण है।

प्र-6: संथारा कब किया जाता है?

उ-6 : जब शरीर धर्माराधना करने के लिए सक्षम न हो, शक्तियाँ क्षीण हो गई हो, शरीर में असाध्य रोग उत्पन्न हुए हो, या मारणांतिक उपसर्ग आते है तब संथारा किया जाता है। जैसे आनंद श्रावक का अनशन।

प्र-7 : संथारा लेने की विधि क्या है?

उ-7 : (1) पौषधशाला पूंजकर और लघुनीत, वडीनीत की जगह देखकर और पूंजकर बिस्तर करना। फिर...

(2) पूर्व तथा उत्तर दिशा में मुख रखकर, पर्यकासन (पालथी मारकर) या अनुकुल आसन पर बैठकर, बाया घुटना खडा करके, दो हाथ जोडकर तीन नमोत्थुणं- सिद्ध भगवंत को, अरिहंतदेव को और धर्मगुरु को करना है। फिर...

(3) पू. साधु-साध्वीजी या अनुभवी श्रावक-श्राविका के समक्ष अपने बारह व्रतों में लगे अतिचारों की निष्कपट आलोचना करके प्रायश्चित्त ग्रहण करना। फिर...

(4) तिन आहार या चार आहार, अठारह पाप और शरीर का तीन करण और तीन योग याने नौ कोटि से त्याग करना। इसके लिए पाठ के इन शब्दों "सव्वं पाणाईवाईयं... से लेकर, विहरिस्सामि" यहाँ तक का पाठ बोलकर संथारे के पच्चक्खान एक-एक दिन उस में बढ़ाते जाना या जाव जीवन के किए जाते है।

यदि पू. साधु-साध्वीजी या श्रावक का संयोग न मिले तो स्वयं आलोचना करके संथारा ग्रहण कर सकते हैं। यदि पानी का आगार रखना है तो संथारा ग्रहण करते समय 'पाणं' शब्द नहीं बोलना। गादि, पलंग आदि का आगार संथारा करने से पहले निश्चित कर लेना होता है। गृहस्थों की सेवा की छूट होती है।

प्र-8: संथारा कितनी कोटि का होता है? कौन कौनसी? बताईए...

उ-8: तीन करण: (1) मैं स्वयं सावद्य योग करुं नहीं, (2) कराउ नहीं, (3) अनुमोदना करुं नहीं। **तीन योग:** (1) मन, वचन और काया। 3 करण X 3 योग = 9 कोटि से अनशन के पच्चक्खान किए जाते है। नौ कोटी इस प्रकार हैं: (1) स्वयं करुं नहीं, वह करण और मन से वह योग, (2) मन से कराऊं नहीं और (3) मन से अनुमोदु नहीं, (4) करुं नहीं वचन से, (5) कराऊं नहीं वचन से और (6) अनुमोदु नहीं वचनसे, (7) काया से करुं नहीं, (8) काया से कराऊं नहीं और (9) काया से अनुमोदु नहीं। इस प्रकार नौ कोटि हुई।

प्रश्न-9: संथारा ग्रहण करने से पूर्व इस जीवन में जीव ने शरीर को क्या मानकर उसे संभाला ? या अनशन के पाठ में शरीर के लिए कौन से शब्दों की उपमा दी है?

उ-9 : (1) इट्ठं = इष्टकारी, (2) कंतं = कांत, सुंदर, (3) पियं = प्रिय, (4) मणुन्नं = मनोज्ञ, (5) मणामं = मन को अत्यंत प्रिय, (6) धीज्जं = धैर्यरूप, (7) विसासियं = विश्वास करने योग्य, (8) समयं = सम्मत्, मानने योग्य, (9) अणुमयं = विशेष मानने योग्य (10) बहुमयं = सबके द्वारा मानने योग्य, (11) भंड करंडग समाणं = आभूषण रखने की पेटी समान, (12) रयण करंडग भूयं = रत्नों की पेटी समान।

संथारा ग्रहण करने से पहले जीवने शरीर को इस प्रकार का मानकर उसे संभाला होता है। इस प्रकार कुल 12 शब्दों द्वारा शरीर को उपमा दी गई है।

प्र-10: संथारा धारण करने से पहले इस जीवन में जीव ने शरीर को कैसे उपसर्गों और परिषहों से बचाया है?

उ-10: शरीर पर आनेवाले उपसर्गों - परीषह आदि का निर्देश 'माणं सीयं से परीसहोवसग्गा' शब्दों से किया है, जैसे ठंडी, गर्मी, भूख, प्यास, साँप का काटना, चोर आदि का डर, डाँस की कांट, मच्छर की कांट, वात, पित्त, कफ, त्रिदोष, विविध रोग आदि उपसर्ग - परीषहों से शरीर को बचाया है।

प्र-11: संथारे के मुख्य प्रकारों को संक्षेप में बताएँ।

उ-11 : संथारे के तीन मुख्य प्रकार हैं - **(1)** भक्त प्रत्याख्यान संथारा, **(2)** इंगित मरण संथारा, **(3)** पादपोपगमन संथारा। इसकी समझ इस प्रकार है।

भक्त प्रत्याख्यान संथारा	इंगित मरण संथारा	पादपोपगमन संथारा
1. तिविहार या चौविहार करके	केवल चौविहार	केवल चौविहार
2. क्षेत्र मर्यादा करना जरूरी नहीं है।	मर्यादित क्षेत्र में हलनचलन	शरीर हलनचलन न करें।
३. भक्त प्रत्याख्यान=आहार पानी-मर्यादापूर्वक त्याग	इंगित -मर्यादित सीमा की छुट	पादप+उपगमन= वृक्ष की टुटी डाली की तरह शरीर को सूखाना।
4. चतुर्विध संघ आराधना कर सकता है।	चतुर्विध संघ आराधना कर सकता है।	चतुर्विध संघ आराधना कर सकता है।
5. वर्तमान में होता है।	वर्तमान में नहीं होता।	वर्तमान में नहीं होता।
6. वैयावच्च भी कराते हैं।	वैयावच्च नहीं कराते।	वैयावच्च नहीं कराते।

प्र-12: हमेशा रात को संलेखना (सागारी संथारा) कैसे किया जाता है?

उ-12: रात को सोते समय सागारी (आगार सहित) संथारा किया जाता है। उसके पच्चक्खान इस प्रकार लेने होते है।

"आहार शरीर और उपधि, पच्चक्खुं पाप अढार,
मरण आवे तो वोसिरे, पारुं तो बोली एक नवकार"

प्र-13: सागारी संथारा कौन कौन से समय कर सकते है? किस तरह?

उ-13 : सागारी (आगार सहित) संथारा हररोज रात को सोते समय, संकट के समय, रोग के समय, ओपरेशन के समय, भय का प्रसंग हो, अचानक कहीं भी मृत्यु का उपक्रम आया हो, ऐसा लगे तब कर सकते है। जहां उपसर्ग आता है, वहां की भूमि को पौंजकर संथारे का ''नमोत्थुणं से विहरामि'' (विहरीस्सामि) तक पाठ बोला जाता है। फिर ऊपर बताया है, वैसे सागारी संथारे के पच्चक्खान लिए जाते है।

प्र-14: संथारे से क्या लाभ होता हैं?

उ-14 : अनशन समाधि मरण है। उस से **(1)** श्रावक के तीसरे मनोरथ की आराधना होती है। **(2)** श्रावक के चौथे आश्रय स्थान की आराधना होती है। **(3)** प्रथम बाह्य तप की आराधना होती है। **(4)** करोड़ों भवों के कर्म की निर्जरा होती हैं। **(5)** भविष्य के अनंत बाल मरणों से मुक्ति मिलती हैं। **(6)** परभव में उच्च गति या मोक्ष की प्राप्ति होती है।

प्र-15: किस तिर्यंच ने संथारे की आराधना की थी?

उ-15: छठे अंग सूत्र श्री ज्ञाताधर्मकथा के तेरहवें अध्ययन में नंद मणियार के जीव ने 'मेंढक' के भव में और कथा में उल्लेख है कि चंडकौशिक सर्प ने संथारे की आराधना की थी।

प्र-16: उपाश्रय का दूसरा नाम प्रतिक्रमण के किस पाठ में कैसे बताया गया है?

उ-16: संथारा पाठ में ''पौषधशाला पौंजकर'' शब्द से उपाश्रय का दूसरा नाम 'पौषधशाला' बताया गया है।

प्र-17: क्या संथारा करना वह आपघात या आत्मघात है?

उ-17: नहीं, मृत्यु का समय नजदीक जानकर, व्रत, प्रत्याख्यान से शुद्ध बनकर, सारे जीवों के प्रति क्षमाभाव रखकर, शांतिपूर्वक मरने की तैयारी करना संथारा है। संथारा स्वनिर्णय है। संथारे में अवगुणों की घात होती है। आत्मशुद्धि होती है। संथारा समाधि मरण है। शूरवीरों की आराधना है। अप्रमाद की साधना है और प्रायश्चित की पुनीतगंगा में स्नान है। यह संसार को कम करता है और उच्च गति देता है। इसलिए इसे आपघात नहीं कहते।

लेकिन जब कोई शारीरिक, मानसिक पीड़ा या बीमारी से घबराकर, सही-गलत का विचार किए बिना, सोचे समझे बिना मरण करते है तो वह आपघात है। आपघात कषाय के कारण होता है। लज्जा, निराशा, मोह या राग-द्वेष से ग्रहित होकर जीव आत्मघात रूप कायर काम करता है।

प्र-18: संथारा सहित पंडित मरण किसे आता है?

उ-18: ज्ञान, दर्शन, चरित्र और तप की उत्तम आराधना करने वाले साधु या श्रावक को आता है।

प्र-19: पंडित मरण का फल कितना है?

उ-19: मिथ्यात्वी के अनंता बाल मरण से एक पंडित मरण उच्च है, बड़ा है। श्रावक

के बाल पंडित मरण से एक पंडित मरण बड़ा है, उच्च है। संयम जीवन का सार भी पंडित मरण है। पंडित मरण ऐसा उत्तम है, इसलिए साधु का भी तीसरा मनोरथ पंडित मरण है।

प्र-20: श्रावक व्रत के अतिचार कितने है? कौन-कौन से? वह अतिचार आचरण करने योग्य है?

उ-20: श्रावक के बार व्रत के अतिचार 99 है। ज्ञान के 14, दर्शन के 5, चरित्र के 75 और तप के 5। यह 99 अतिचार जानकर मात्र छोड़ने योग्य है, पर आचरण करने योग्य नहीं।

अपेक्षित प्रश्न :-

1. प्रतिक्रमण में रणसंग्राम का, शूरता का, वीरता का और धीरता का पाठ कौन सा है?
2. पाप का पसारा समेट ने का पाठ कौन सा है?
3. परमगति या सद्गति का रिजर्वेशन का पाठ कौन सा है?
4. संथारे के पाठ में किस-किस को नमस्कार है?
5. संथारा में चक्रवर्ती बनने की भावना करें तो कौन सा अतिचार लगता है?
6. तप के अतिचार कौन से पाठ में है?

पाठ 19: अठारह पापस्थानक

प्र-1 : 18 पापों में सबसे बड़ा पाप कौन सा है? क्यों?

उ-1 : अठारवा पाप 'मिथ्यादर्शन शल्य' यह सब से बड़ा पाप है। जब तक मिथ्यात्व के पाप का संपूर्ण त्याग ना हो तब तक... प्रथम के 17 पापों का पूर्ण त्याग नहीं हो सकता, इसलिए अठारवा पाप सब से बडा है।

प्र-2 : 'पाप स्थान' ऐसा क्यों कहा जाता है?

उ-2 : जिस कर्म के फल आत्मा को भुगतने कड़वे लगते हैं, वह पाप है। इन पापों के उत्पत्ति के जो स्थान है, वह पापस्थान है। ऐसे पापस्थान 18 है। उनका आचरण करने से बहुत अशुभ कर्मों का बंध होता है। आत्मा नरक, तिर्यच आदि दुर्गति में जाती है।

प्र-3 : परिग्रह और लोभ में क्या अंतर है?

उ-3 : प्राप्त वस्तु का संग्रह करना, नई वस्तुओं को ग्रहण करना और उसके प्रति ममत्व भाव रखना वह परिग्रह है। अप्राप्त वस्तु की इच्छा, प्राप्त वस्तु छोड़ने का भाव

ना रखना वह लोभ है।

प्र-4 : सात कुव्यसन के नाम क्या है?

उ-4 : सात कुव्यसन के नाम: **1.** मदिरापान (दारू) **2.** माँसाहार **3.** जुआ, **4.** चोरी, **5.** शिकार **6.** परस्त्रीगमन **7.** वैश्यागमन

प्र-5 : सात कुव्यसनों का कौन-कौन से पापों में समावेश हो जाता है?

उ-5 : प्राणातिपात में मदिरापान, माँसाहार, शिकार। अदत्तादान में चोरी। मैथुन में परस्त्रीगमन वैश्यागमन और परिग्रह में जुआ।

प्र-6 : सात कुव्यसनों से कैसे अनर्थ परिणाम आते हैं?

उ-6 : (1) मदिरापान: मदिरापान करने से आर्थिक नुकसान, शारीरिक नुकसान, मानसिक बीमारी, परिवार में संबंध खराब होते है, कुल को कलंक लगता है, नशे में अनैतिक कृत्य हो जाते हैं। **(2) माँसाहार:** माँसाहार से नरकगति के आयुष्य का बंध होता है, पंचेन्द्रीय की हिंसा होती है, जैन धर्म की हिलना होती है, खानदानी लज्जास्पद बनती है, क्रुरता के कुसंस्कार आते हैं। **(3) जुआ:** जुआ खेलने से धन संपत्ति खत्म हो जाती है, खराब मित्रों की संगत बढ़ती है, दारू-चोरी जैसे दूसरें व्यसन जीवन में प्रवेश करते हैं, पसीने की कमाई पाप में बह जाती है। **(4) चोरी:** चोरी से अपयश फैलता है, अविश्वास बढ़ता है, तिर्यंचगति का आयुष्य बंध होता है, और अनीति से आए धन से प्रमाणिकता से आया धन भी चला जाता है, चोरी पकड़ी जाती है तो अपयश होता है और जेल आदि दंड मिलते हैं, इस भव में बच गए तो परभव में कर्म के फल तो भुगतने ही पडते हैं। **(5) शिकार:** शिकार से नरक गति के आयुष्य का बंध होता है, अशाता वेदनीय कर्म का तीव्र बंद होता है, परभव में अशुभ दीर्घ आयुष्य का बंध होता है, एक जीव लेने के बदले में अनंत मौत हमें मरना पड़ता है। **(6) परस्त्रीगमन:** परस्त्रीगमन करने से श्रावकत्व शर्मशार होता है, जैनत्व की निंदा होती है, अपने परिवार में संबंध खराब होते है, परस्पर अविश्वास बढ़ता है और तलाक की नौबत आती है, यह भव बिगड़ता है, संतानों के भविष्य भी बिगड़ते हैं। **(7) वैश्यागमन:** अब्रह्म के घोर, भयानक, दुखद परिणाम भुगतने पड़ते हैं, नरक, तिर्यंच आदि दुर्गति होती है, संसार बढ़ता है, यह भव-परभव दोनों बिगड़ते हैं, मानवभव का खराब उपयोग करने से भविष्य में मानवभव मिलना अति दुर्लभ हो जाता है।

प्र-7 : 18 पाप के भंग (भेद) कितने? कैसे?

उ-7 : 18 पाप को करना, करवाना, अनुमोदन करना, इन तीनों का गुणाकार 18 × 3 = 54 होते है। इन 54 को मन, वचन, काया से 54 × 3 = 162 भेद हुए।

प्र-8 : 18 पाप में से मन, वचन और काया के पाप कौन-कौन से?

उ-8 :

18 पाप	मन	वचन	काया
1. प्राणातिपात	x	x	हा
2. मृषावाद	x	हा	x
3. अदत्तादान	x	x	हा
4. मैथुन	x	x	हा
5. परिग्रह	x	x	हा
6. क्रोध	हा	x	x
7. मान	हा	x	x
8. माया	हा	x	x
9. लोभ	हा	x	x
10. राग	हा	x	x
11. द्वेष	हा	x	x
12. कलह	x	हा	x
13. अभ्याख्यान	x	हा	x
14. पैशुन्य	x	हा	x
15. पर परिवाद	x	हा	x
16. रइ-अरइ	x	x	हा
17. मायामोसो	x	हा	x
18. मिच्छादंसणसल्लं	हा	x	x
सब मिलाके 18 पाप	**7 +**	**6 +**	**5**

प्रश्न-9: प्रतिक्रमण में पापस्थान का वर्णन क्यों दिया गया है?

उ-9 : पाप का स्वरूप समझे बिना उसका त्याग करना कैसे शक्य होगा!!! इसलिए 18 पाप को जानकर, उसकी आलोचना करके, उसे छोड़ने के लिए प्रतिक्रमण में उसका वर्णन दिया गया है।

अपेक्षित प्रश्न :-

1. जैसा करे वैसा भरे वह पाप कौन सा? (अभ्याख्यान)
2. दो पाप इकट्ठा होकर कौन सा पापस्थान बनता है? (मायामोसो)
3. प्यारे लगे वह पाप कौन से?
4. सच बोले फिर भी कौन सा पाप लगता है?
5. सब से बड़ा पाप कौन सा?
6. विरासत में कौन सा पाप मिलता है?

पाठ 20: पच्चीस प्रकार के मिथ्यात्व

प्र-1 : मिथ्यात्व यानी क्या?

उ-1 : तत्व की झूठी मान्यता को मिथ्यात्व कहते हैं। दर्शन मोहनीय कर्म के उदय से जीव अजीव आदि नव तत्व में श्रद्धा न होना, सुदेव, सुगुरु और सुधर्म में कम, अधिक या विपरित श्रद्धा होना यह मिथ्यात्व है।

प्र-2 : जीव को अजीव श्रद्धे यह मिथ्यात्व यानी क्या?

उ-2 : जीव को न मानना। जैसे - पृथ्वी, पानी, वनस्पति, अंडे या संमूच्छिम में जीव न मानना।

प्र-3 : अजीव को जीव श्रद्धे यह मिथ्यात्व यानी क्या?

उ-3 : दहीं, थूंक, पसीना आदि अजीव को जीव मानना।

प्र-4 : धर्म को अधर्म श्रद्धे यह मिथ्यात्व कैसे?

उ-4 : केवली प्ररूपित सूत्र और सिद्धांत को मिथ्या समझना या छद्मस्थ ने रचना की है ऐसा समझना। धर्म के उपकरण जैसे रजोहरण, गुच्छा, वस्त्र, पात्र आदि को परिग्रह मानना। अभयदान, सुपात्रदान को अधर्म मानना।

प्र-5 : अधर्म को धर्म श्रद्धे यह मिथ्यात्व कैसे?

उ-5 : केवली के सिवा अन्य किसी के प्ररूपित अन्य ग्रंथो को धर्मशास्त्र मानना। राग, द्वेष, विषय और विकार बढ़ाने वाले मिथ्या वचनों को भगवान के वचन मानना।

प्र-6 : साधु को कुसाधु श्रद्धे यह मिथ्यात्व किस तरह?

उ-6 : जो पांच महाव्रत के पालक हैं, पाँच समिति और तीन गुप्ती से युक्त है, जिनकी श्रद्धा और प्ररूपणा केवली प्ररूपित धर्म की है, वैसे सच्चे साधु को कुसाधु मानना।

प्र-7 : कुसाधु को साधु मानना यह मिथ्यात्व कैसे?

उ-7 : जो पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ती रहित है, जिनकी श्रद्धा - प्ररूपणा केवली ने बताए हुए धर्म की नहीं है किंतु वेश से साधु है, ऐसे कुसाधु को साधु मानना।

प्र-8 : जिन मार्ग को अन्य मार्ग माने यह मिथ्यात्व कैसे?

उ-8 : सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन, सम्यक् चारित्र और सम्यक् तप आदि द्वारा धर्म न मानना। संवर, निर्जरा, दान, शील, तप और भाव आदि को संसार का मार्ग मानना।

प्र-9 : अन्य मार्ग को जिन मार्ग माने वह मिथ्यात्व कैसे?

उ-9 : झूठी श्रद्धा, अंधश्रद्धा, झूठा ज्ञान या असत्य आचरण को धर्म का मार्ग मानना। संसार की वृद्धि करानेवाले यज्ञ आदि हिंसा के कारण को मोक्ष के हेतु मानना।

प्र-10: आठ कर्म से मुक्त को अमुक्त मानना यह मिथ्यात्व कैसे?

उ-10: सिद्ध भगवंत जिन्हों ने आठों कर्मों का क्षय कर अजर, अमर ऐसे मोक्ष पद को प्राप्त किया है, फिर भी ऐसा मानना वे कर्म सहित है और संसार में फिर से जन्म लेंगे या कर्म का नाश होते ही आत्मा का नाश हो जाता है। इसलिए लोकाग्र भाग में कोई सिद्ध है ही नहीं ऐसा मानना।

प्र-11: आठ कर्म से मुक्त नहीं, उन्हें मुक्त श्रद्धे यह मिथ्यात्व कैसे ?

उ-11: राग-द्वेष युक्त जो धर्मगुरु, धर्मदेव लोगों के द्वारा माने जाते हैं, जिनके एक भी कर्म अभी टूटे नहीं (क्षय नहीं हुए) उन्हें कर्म मुक्त, जन्म-मरण से मुक्त मानना।

प्र-12: जिन मार्ग से कम, अधिक और विपरीत प्ररूपणा किसे कहते हैं ?

उ-12: जिन मार्ग से कम यानी आत्मा को अंगूठा प्रमाण, चावल प्रमाण माने वह। आत्मा को संपूर्ण ब्रह्मांड (लोक) में व्याप्त मानना यह अधिक प्रारूपणा है। पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और आकाश यह पंच महाभूत से जीव उत्पन्न होता है, ऐसा मानना आदि यह विपरीत प्रारूपणा है।

अपेक्षित प्रश्न :-

1. नीचे दिए गए कर्म करने से कौन सा मिथ्यात्व लगता है?

(क) शीतला सप्तमी करें।

(ख) तीर्थंकर के चित्र को वंदे।

(ग) मेरा काम होगा तो छट्ठ करूँगी ऐसा धारे।

(घ) भगवान के मार्ग के विरोधी बने।

(ङ) नरक है कि नहीं है, ऐसी शंका करना।

(च) एकेंद्रीय की नासमझ।

(छ) ज्ञानी होकर दुखी होना उससे, ना पढ़ना अच्छा, ऐसा मानना।

(ज) गुरु आज्ञा का जानबूझकर भग करना।

2. सबसे बड़ा मिथ्यात्व कौन सा?

पाठ 21: चौदह स्थान के संमूर्च्छिम मनुष्य

प्र-1 : संमूर्च्छिम जीव किसे कहते हैं?

उ-1 : जो जीव माता-पिता के संयोग बिना, गर्भ बिना अपने आप उत्पन्न होते हैं उसे संमूर्च्छिम जीव कहते हैं। सर्व एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौरेंन्द्रिय और असंज्ञी तिर्यच पंचेन्द्रिय जीव संमूर्च्छिम जीव कहे जाते हैं।

प्र-2 : गर्भज किसे कहते हैं? वे संज्ञी है या असंज्ञी?

उ-2 : जो जीव माता-पिता के संयोग से गर्भ में उत्पन्न होते हैं, उसे गर्भज कहते हैं। संज्ञी तिर्यच पंचेन्द्रिय तथा संज्ञी मनुष्य गर्भज होते हैं। वह संज्ञी यानी की मन वाले होते हैं।

प्र-3 : देवता और नारकी के जीव गर्भज है कि संमूर्च्छिम?

उ-3 : देवता उपपात शय्या में और नारकी कुंभि में जन्म लेते हैं। इसलिए उनको गर्भज या संमूर्च्छिम नहीं कहते है, उसे उपपातिक (औपपातिक) जीव कहते हैं।

प्र-4 : संमूर्च्छिम मनुष्य यानी क्या ? वे संज्ञी हैं या असंज्ञी ?

उ-4 : जो पंचेन्द्रिय मनुष्य (1) माता-पिता के संयोग बिना, (2) 101 क्षेत्र के संज्ञी मनुष्य के शरीर की 14 प्रकार की अशुचि में, (3) अपने आप स्वयं (सहज) उत्पन्न हो जाते है, उसे संमूर्च्छिम मनुष्य कहा जाता है। संमूर्च्छिम मनुष्य असंज्ञी यानी बिना मनवाले होते है।

प्र-5 : मनुष्य के शरीर की अशुचि में कितने, कहाँ और कब संमूर्च्छिम मनुष्य उत्पन्न होते हैं?

उ-5 : मनुष्य के अशुचि की एक बूँद या कण में असंख्य संमूर्च्छिम मनुष्य उत्पन्न होते है। शरीर की अशुचि शरीर के अपने मूल उत्पत्ति स्थान से बाहर निकल जाने के

बाद अंतर्मुहूर्त में संमूर्च्छिम मनुष्य की उत्पत्ति हो जाती है।

प्र-6 : संमूर्च्छिम मनुष्य को पर्याप्ति कितनी होती है? क्या हम उन्हें देख सकते हैं?

उ-6 : संमूर्च्छिम मनुष्य प्रथम पाँच पर्याप्ति बाँधने की शुरूआत एक साथ करते है। लेकिन चौथी श्वासोच्छवास नाम की पर्याप्ति बाँधना पूरा करने से पहले ही अपर्याप्त अवस्था में उनकी मृत्यु हो जाती है। इसलिए उन जीवों के शरीर इतने छोटे - सूक्ष्म होते हैं कि हम उन्हें अपनी आँखों से नहीं देख सकते।

प्र-7 : संमूर्च्छिम मनुष्य का आयुष्य कितना होता है और उन्हें कितनी इन्द्रियाँ होती हैं?

उ-7 : संमूर्च्छिम मनुष्य का आयुष्य अंतर्मुहूर्त का और इन्द्रियाँ पाँच होती है।

प्र-8 : असंज्ञी पंचेन्द्रिय में किस-किस का समावेश किया गया है?

उ-8 :असंज्ञी पँचेंद्रिय में संमूर्च्छिम मनुष्य और जलचर, स्थलचर, उरपर, भूजपर और खेचर ये पाँच असंज्ञी तिर्यंच पँचेन्द्रिय का समावेश किया गया हैं।

प्र-9 : नीचे दिए गए बोलो में संमूर्च्छिम मनुष्य उत्पन्न होते हैं या नहीं ?

1. मच्छर के लहू में 2. जुगलिया मनुष्य के मूत्र में 3. कुत्ते की उल्टी में 4. अपने पसीने में 5. साधु के मृतदेह में 6. बिल्ली की विष्टा में 7. हमारी थूंक में 8. महाविदेह के मनुष्य की अशुचि में 9. कान के मेल में 10. लघुनीत परठकर भाजन गिला रख दिया हो उस में ?

उ-9 : (1) मच्छरनुं लोही (2) जुगलिया मनुष्य के मूत्र में (5) साधु के मृतदेह में (8) महाविदेह के मनुष्य की अशुचि में (10) लघुनीत परठकर भाजन गिला रख दिया हो उस में... इन बोलो में संमूर्च्छिम मनुष्य उत्पन्न होते हैं। (1) मच्छर के लहू मे (3) कुत्ते की उल्टी में (4) हमारे पसीने में (6) बिल्ली की विष्टा में (7) हमारी थूंक में (9) कान के मेल में। इन बोलो में संमूर्च्छिम मनुष्य उत्पन्न नहीं होते।

प्र-10: तिर्यंच पंचेन्द्रिय की अशुचि जैसे कि विष्टा, वमन, गोबर आदि में कौन से जीव उत्पन्न होते हैं?

उ-10: संमूर्च्छिम मनुष्य तो मात्र संज्ञी मनुष्यों की अशुचि में ही उत्पन्न होते हैं। इसलिए तिर्यंच पंचेन्द्रिय की अशुचि में मात्र विकलेन्द्रिय जीव उत्पन्न होते हैं।

प्र-11: 14 संमूर्च्छिम मनुष्य की उत्पत्तिस्थान की सामान्य समझ दीजिए।

उ-11: (1) पहला उच्चारेसु वा... से सुक्केसु वा ये नव मुख्य अशुचि स्थान है।

(2) दसवे नंबर में शुक्र के पुद्गल सूख गये हो और वह वापस गीले होते है तो उस में संमूर्च्छिम मनुष्य उत्पन्न होते है। (3) 11 वे में मनुष्य के मृतदेह में उच्चारेसु वा... आदि प्रथम नव अशुचि होती है उस हर एक में संमूर्च्छिम मनुष्य उत्पन्न होते है। एक ही मृतदेह में अनेक अशुचि होती है। उस हर एक में संमूर्च्छिम मनुष्य उत्पन्न होते है। (4)12 वा स्त्री-पुरुष के संयोग में स्त्री के रुधीर में और पुरुष के वीर्य/ शुक्र के संयोग में संमूर्च्छिम मनुष्य उत्पन्न होते है। (5)13 वे और 14 वे बोल में भी उच्चारेसु वा आदी प्रथम 9 अशुचि इकट्ठी होती हैं, तो ही संमूर्च्छिम मनुष्य उत्पन्न होते है। इस प्रकार 14 स्थान में प्रथम दस संमूर्च्छिम मनुष्य उत्पन्न होने के एकेक स्थान है और 11 से 14 ये प्रथम दस के संयोगी स्थान है।

प्र-12: प्रतिक्रमण में संमूर्च्छिम मनुष्य का पाठ क्यों बोला जाता हैं?

उ-12: अपने शरीर में से मल मूत्र आदि अशुचि के जो 14 स्थान संमूर्च्छिम के पाठ में बताए है, वह पूरे दिनभर निकलते रहते है। उस अशुचि को हमें खुली जगह में त्याग करना चाहिए। जिससे वह जल्दी सुख जाए और उस में जीव उत्पन्न न हो सकें। संमूर्च्छिम जीवों की हिंसा के पाप को दूर करने के लिए और पाप की परंपरा को तोडने के लिये यह पाठ बोलने में आता है।

प्र-13: संमूर्च्छिम मनुष्य की दया पालने हेतु आप क्या ध्यान रखेंगे?

उ-13: (1) संडास, बाथरूम का उपयोग कम करेंगे। (2) गटर में पानी आदी अशुचि न जाए उसका ध्यान रखेंगे। (3) खुल्ली जगह की सुविधा हो तो भाजन का उपयोग करेंगे। जिस जगह सूर्य की धूप, हवा आती हो तो अशुचि जल्दी सूख जाए वैसे परठेंगे। (4) रस्ते पर कफ आदि नहीं थूकेंगे। (5) नीचे देखकर चलेंगे जिससे थूंक, कफ आदि पर पैर न पड़ें। (6) छोटी सामान्य बिमारी में ब्लड, युरिन का टेस्ट नहीं करवाएँगे। (7) ब्लडबैक आदि के लिए ब्लड इकट्ठा करना आदि प्रवृत्ति में भाग नहीं लेंगे। (8) सामायिक और प्रतिक्रमण के समय अशुचि त्याग करने की जरूर पडे तो बाथरूम का उपयोग नहीं करेंगे। भाजन का उपयोग करेंगे और खुली जगह में अशुचि परठेंगे।

अपेक्षित प्रश्न :-

1. प्रतिक्रमण में नपुंसकवेद का पाठ कौन सा है?

2. गंदगी में उत्पन्न होनेवाला मनुष्य कौन है?

3. छोटे से छोटा आयुष्य वाला मनुष्य कौन?

4. क्या मक्खी मनुष्य को खाती है? किस तरह?

5. नीचे दी हुई अशुचि में कौन से बोल के जीव उत्पन्न होते है?

(क) मल/मूत्र तपासने (टेस्टिंग) के लिए दे उस में।

(ख) ब्लडबैक में लहु (खुन, ब्लड) इकट्ठा करें उस में।

(ग) मृत मनुष्य के शरीर में

(घ) कफ आदि गटर में थूंके तो ?

(ङ) उलटी करें उसमें?

(च) जखम में से निकलते मबाद में?

(छ) कुत्ते की विष्टा में?

पाठ २२: मांगलिक

प्र-१ : मंगल यांनी क्या?

उ-१ : (१) जिसके द्वारा 'मम्' अर्थात् मद, अभिमान और 'गल' अर्थात्, गल जाना है, वह शुभ यांनी मंगल है। (२) जो सभी प्राणियों के कल्याण/ हित के लिए प्रयास करते हैं वे मंगल हैं। (३) जो सभी दुर्भाग्य और अन्य परेशानियों को दूर करता है। (४) जो जीवको संसार सागर से पार करवाए वह मंगल हैं।

प्र-२ : सर्वश्रेष्ठ/ उत्तम किसे माना जाता है? सर्वश्रेष्ठ/ उत्तम कितने और कौन से हैं?

उ-२ : श्रेष्ठ वह है जो अनंतकाल से भटकते हुए भव्य आत्माओं को उन्नति के मार्ग पर ले जाए। चार सर्वश्रेष्ठ, उत्तम, मंगल अरिहंत, सिद्ध, साधु और केवली प्ररूपित धर्म हैं।

प्र-३ : भव्य जीवों के लिए अरिहंत, सिद्ध, साधु और केवली प्ररूपित धर्म का स्वरूप कैसा है?

उ-३ : इन सब का स्वरूप मंगलकारी और कल्याणकारी है। उत्तम और सर्वोत्तम है। शरणदाता और सुखदाता है।

प्र-४ : अरिहंत, सिद्ध, साधु और केवली प्ररूपित धर्म ही हमारे लिए मंगल रूप क्यों है?

उ-४ : भगवान अरिहंत ने घाती कर्म क्षय करके, सिद्ध भगवान ने आठों कर्मों को क्षय करके, साधु भगवान ने संयम तप का पालन करके अपनी आत्मा को मंगल

कर लिया है। केवली प्ररूपित धर्म के आचरण से ही हम धर्मी, त्यागी, वीतरागी और सिद्ध बन सकते हैं। इसलिए यह मंगल स्वरूप है।

प्र-५ : अरिहंत, सिद्ध, साधु और केवली प्ररूपित धर्म हमारे लिए उत्तम क्यों हैं?

उ-५ : अरिहंत भगवान १२ गुणों, ३४ अतिशय, १००८ लक्षणों से उत्तम हैं। सिद्ध भगवान ने मोक्ष का अनंत सुख प्राप्त किया है इसलिए वे उत्तम हैं। साधु - साध्वी पांच महाव्रतों, अष्ट प्रवचन माता का पालन करने से २७ गुणों से उत्तम हैं। केवली प्ररूपित धर्म-श्रुतधर्म, चारित्रधर्म, जिनवाणी उत्तम हैं क्योंकि ये सर्व दुखों से मुक्त कराने वाले हैं।

प्र-६ : अरिहंत, सिद्ध, साधु और केवली प्ररूपित धर्म किस प्रकार हमारे लिए शरणरूप हैं? उनके प्रति हमारा क्या कर्तव्य है?

उ-६ : मंगलकारी और उत्तम अरिहंत, सिद्ध, साधु और केवली प्ररूपित धर्म का शरण लेना यही हमारा कर्तव्य है।

(१) अरिहंत का शरण लेने के लिए तीर्थंकर भगवान की आज्ञा का पालन करना।

(२) सिद्ध का शरण लेने के लिए आत्मार्थी बन मोक्षमार्ग की आराधना करके सिद्ध बनने का लक्ष्य रखना।

(३) साधु-साध्वी का शरण लेने के लिए सच्चे श्रावक बनना।

(४) केवली प्ररूपित धर्म का शरण लेने के लिए कुधर्म को त्याग कर सुधर्म, श्रावकधर्म, साधुधर्म की आराधना करना। इन चार शरण को प्रतिदिन अंगीकार करना और यह जानकर कि मृत्यु का समय निकट है, इनका प्रगटरूप से उच्चारण करना।

अपेक्षित प्रश्न :-

(१) विश्व में कितने शरण हैं? कौन-कौन से?

(२) जगत में मंगल कितने है ? कौन-कौन से?

(३) देव, गुरु और धर्म का वर्णन किस पाठ में होता है?

(४) चार शरण का फल क्या है?

कर्म स्वरूप, कर्म प्रकृति तथा कर्म अवस्था

1. कर्म स्वरूप

जैनदर्शन कहता है कि- इस सृष्टि, शरीर और संयोगो की विषमता का यदि कोई मुख्य कारण है, तो वह कर्म है। कोई भी कार्य बिना कारण के उत्पन्न नहीं होता। कर्म के फलस्वरूप ही पुनर्जन्म-भवपरम्परा की प्राप्ति होती है। कर्मबंध के अभाव और कर्म से पूर्ण मुक्ति से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

प्र-1 : कर्म यांनी क्या ? इसकी परिभाषा लिखिए।

उ-1 : 'क्रियते इति कर्म:।' क्रिया करने से जो बंधते है वह कर्म है।

मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और योग के कारण जो आत्मा के साथ बँधते है उसे 'कर्म' कहते हैं। जब जीव राग या द्वेष करता है, तब जीव के अवगाहित आकाश प्रदेश में रहे हुए कार्मण वर्गणा के अनंताअनंत सूक्ष्म स्कंध लोहचुंबक की तरह आकर्षित होते हैं और आत्म प्रदेश के साथ चिपक जाते हैं, इसे 'कर्म' कहा जाता है।

वर्गणा का अर्थ है लोक में विशिष्ट पुद्गलों का समूह। वर्गणा अनंत प्रकार की हैं। उनमें से आठ प्रकार की वर्गणा जीव ग्रहण कर सकता हैं। उसके नाम हैं: (1) औदारिक, (2) वैक्रिय, (3) आहारक, (4) तैजस, (5) श्वासोच्छवास, (6) भाषा (7) मन (8) कार्मण वर्गणा।

प्र-2 : जीव और कर्म का संबंध कैसा और कब से है?

उ- 2 : जैसे लोहे के गोले को आग में डालते ही उसके अणु-अणु में अग्नि का प्रवेश होता है, जैसे दूध और पानी एक हो जाते हैं, वैसे ही आत्म प्रदेश और कर्मपुद्‌गल का संबंध होता हैं।

जीव और कर्म का यह संबंध अनादिकाल से है। सोने की खान में सोने और मिट्टी की तरह। मिट्टी कब सोने में मिल गई, पता ही नहीं चला। इस प्रकार जीव और कर्म का संबंध भी अनादि से है। उसके परिणाम स्वरूप, उसे 4 गति, 24 दंडक, 84 लाख जीवायोनियों में अनंत जन्म और मरण करने पड़ते है।

प्र-3 : क्या जन्म-मरण के इस चक्र को रोका जा सकता है? इसे क्या कहते हैं?

उ-3 : जब जीव में विवेक प्रकट हो जाता है, तब जन्म-मरण रूपी संसार से मुक्त होने के लिए सम्यक् ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तपरूप मोक्षमार्ग का आश्रय लेकर पुरुषार्थ करता है, तब वह कर्मों रूपी मल को नष्ट कर देता है और शुद्ध सोने की तरह निर्मल हो जाता है। वह निर्मल आत्मा लोक के अग्रभाग में स्थिर हो जाता है, उसे ही मोक्ष कहते हैं। वही आत्मा परमात्मा बन जाता है। शुद्ध आत्मा को फिर कभी भी कर्म बंध नहीं होता और जन्म-मरण भी नहीं करने पड़ते।

प्र-4 : कर्म कितने प्रकार के होते हैं? कौन कौन से?

उ-4 : कर्म के दो मुख्य प्रकार हैं: **(1) द्रव्य कर्म:** जीव के राग-द्वेष रूप परिणाम विशेष से लोक में ठुस-ठुस के भरी हुई कार्मण वर्गणा के पुद्गल आत्मा के साथ जुडते है उसे 'द्रव्य कर्म' कहा जाता है। **(2) भाव कर्म:** जीव के राग-द्वेष रूप परिणाम, जिससे द्रव्य कर्म बँधते है, उसे 'भाव कर्म' कहते है।

अन्य दृष्टि से भी कर्म दो प्रकार के होते हैं: **(1) घाती कर्म:** जो कर्म आत्मा के मूल गुणों जैसे ज्ञान, दर्शन, वीतरागता आदि गुणों की घात (आवरण) कर देते है उसे घाती कर्म कहते हैं। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अंतराय ये चार घाती कर्म हैं। **(2) अघाती कर्म:** जो कर्म आत्मा के ज्ञान आदि मूल गुणों की घात नहीं करते और मूल गुणों को प्रकट होने में बाधक नहीं बनते, उसे अघाती कर्म कहते हैं। वेदनीय, आयुष्य, नाम और गोत्र ये चार अघाती कर्म हैं।

घाती कर्म के नष्ट होने के बाद अघाती कर्म लंबे समय तक नहीं टिकते। आयुष्य पूर्ण होते ही शेष तीन अघाती कर्म क्षय हो जाते हैं, फीर जीव कर्म रहित बनकर सिद्ध हो जाता है।

प्र-5 : जैन दर्शन के अनुसार कर्म सिद्धांत की विशिष्टता समझाइए।

उ-5 : जैनदर्शन के आगम - श्री उत्तराध्ययन सूत्र में तीन बातें स्पष्ट रूप से समझाई गई हैं: **(1)** आत्मा के अपने राग-देष के परिणाम स्वरूप कर्म का निर्माण होता है। **(2)** कर्म कर्ता का ही अनुसरण करते है। **(3)** कर्म भुगते बिना जीव का मोक्ष नहीं होता।

कर्म का कर्ता और भोक्ता जिस प्रकार जीव है, उसी प्रकार कर्म का संहारक (क्षय करने वाला) भी जीव है। इसलिए कर्म से मुक्त होने के लिए कर्म प्रकृतियाँ और उसका बंध किस प्रकार होता है, यह जानना आवश्यक है।

कर्म प्रकृति

श्री पन्नवणा सूत्र पद 23, उ. 1 और श्री भगवती सूत्र शतक 8, 9

आठ कर्मों के नाम:

1) ज्ञानावरणीय कर्म,	4) मोहनीय कर्म,	7) गोत्र कर्म,
2) दर्शनावरणीय कर्म,	5) आयुष्य कर्म,	8) अंतराय कर्म।
3) वेदनीय कर्म,	6) नाम कर्म,	

आठ कर्मो के लक्षण

1) पहला ज्ञानावरणीय कर्म आँख पर बँधी पट्टी के समान।

2) दूसरा दर्शनावरणीय कर्म राजा के द्वारपाल के समान।

3) तीसरा वेदनीय कर्म शहद से लिपटी तलवार के समान।

4) चौथा मोहनीय कर्म (मदिरा पान) शराब पीने के समान।

5) पाँचवां आयुष्य कर्म बेडी के समान।

6) छठ्ठा नाम कर्म चित्रकार के समान।

7) सातवा गोत्र कर्म कुम्भकार के चाक के समान।

8) आठवा अंतराय कर्म राजा के खजानची के समान।

आठ कर्मों ने कौन से गुण को रोका/ढंक दिया है?

1) ज्ञानावरणीय कर्म ने अनंत ज्ञान गुण को ढक दिया है।

2) दर्शनावरणीय कर्म ने अनंत दर्शन गुण को ढक दिया है।

3) वेदनीय कर्म ने अनंत अव्याबाघ आत्मिक सुख गुण को रोक दिया है।

4) मोहनीय कर्म ने वीतरागता गुण को रोक दिया है।

5) आयुष्य कर्म ने अक्षय स्थिति गुण को रोक दिया है।

6) नाम कर्म ने अमूर्त गुण को रोक दिया है।

7) गोत्र कर्म ने अगुरु-लघु गुण को रोका है

8) अंतराय कर्म ने अनंतवीर्य गुण को रोका है।

आठ कर्मों का स्वरूप, आठ कर्म कितने प्रकार से बंधते हैं? कितने प्रकार से भुगतने पड़ते हैं?

आठ कर्मों की स्थिति, ये सब का विस्तार

1. ज्ञानावरणीय कर्म का विस्तार:

ज्ञानावरणीय कर्म छह प्रकार से बंधते है।

1) नाण पडिणियाए - ज्ञान और ज्ञानी के अवर्णवाद बोलने से।

2) नाण निन्हवणियाये - ज्ञान देनेवालों का उपकार भूलना, जिनसे ज्ञान प्राप्त हुआ है उसका नाम छुपाना।

3) नाण अंतरायेणं - ज्ञान प्राप्ति में बाधा (अंतराय) डालना।

4) नाण आसायणाए -ज्ञान और ज्ञानी की अशातना करना।

5) नाण पओसेणं - ज्ञान, ज्ञानी या ज्ञान के उपकरणों पर द्वेष करना।

6) नाण विसंवायणाजोगेणं - ज्ञानी से मिथ्या विवाद, क्लेश, झगड़ा करना।

ज्ञानावरणीय कर्म पाँच प्रकार से भुगतने पड़ते हैं।

(1) मतिज्ञानावरणीय - पाँच इंद्रियों और मन के माध्यम से किसी वस्तु का जो यथार्थ ज्ञान होता है, वह मतिज्ञान है। उस पर आवरण वह मतिज्ञानावरणीय।

(2) श्रुत ज्ञानावरणीय - शब्द द्वारा होता हुआ अर्थ का यथार्थ ज्ञान या सूत्र सिद्धांत का ज्ञान वह श्रुत ज्ञान है। उस पर आवरण वह श्रुतज्ञानावरणीय।

(3) अवधि ज्ञानावरणीय - आत्मा द्वारा रूपी द्रव्यों का जो सीमित यथार्थ ज्ञान होता है उसे अवधिज्ञान कहते है। उस पर आवरण वह अवधिज्ञानावरणीय।

(4) मन:पर्यव ज्ञानावरणीय - ढाईद्विप में रहने वाले संज्ञी जीवों के मन के भावों को जानने वाला ज्ञान वह मन:पर्यव ज्ञान है। उस पर आवरण वह मन:पर्यवज्ञानावरणीय।

(5) केवल ज्ञानावरणीय - संपूर्ण लोकालोक में रहनेवाले सर्व द्रव्य के, सभी गुणों को, सभी पर्यायों को, आत्मा द्वारा एक साथ, एक समय में जाने वह केवलज्ञान कहलाता है। उस पर आवरण वह केवलज्ञानावरणीय।

ज्ञानावरणीय कर्म दस प्रकार से भुगता जाता है।

(1) श्रोत्र आवरण - शब्द का ज्ञान नहीं होता, कान में सुनने की शक्ति नहीं मिलती इस कारण शब्द सून नहीं सकते।

(2) श्रोत्रविज्ञान आवरण - शब्द का ज्ञान है पर विशेष ज्ञान नहीं होता जैसे कि कौन बुला रहा हैं आदि।

(3) नेत्र आवरण - रूप-रंग का ज्ञान नहीं होता, आँख न मिलने के कारण देख नहीं पाते।

(4) नेत्र विज्ञान आवरण - आँख से दिखाई दे परंतु विशेष ज्ञान नहीं होता। देखकर पता नहीं चल पाता कि कौन सा व्यक्ति या वस्तु है, वह तय नहीं कर पाते।

(5) घ्राण आवरण - गंध की अनुभूति न होना, नाक न होने के कारण सूंघने में सक्षम न होना।

(6) घ्राणविज्ञान आवरण - नाक से सूंघने से भी इस बात का विशेष ज्ञान नहीं होता कि किस वस्तु की गंध है।

(7) रस आवरण - रस का ज्ञान न होना। जीभ न होने के कारण स्वाद नहीं ले पाते।

(8) रसविज्ञान आवरण - स्वाद तो आ सकता है लेकिन किसका स्वाद इसका विशेष ज्ञान नहीं होता।

(9) स्पर्श आवरण - स्पर्श का एहसास न होना, जैसे पक्षाघात।

(10) स्पर्शविज्ञान आवरण - स्पर्श का ज्ञान होता है लेकिन विशिष्ट ज्ञान नहीं होता है कि किसका स्पर्श है? जिस प्रकार कोई अंध व्यक्ति स्पर्श से पहचान सकते है, उस प्रकार नहीं पहचान सकते।

ज्ञानावरणीय कर्म की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट तीस क्रोडाक्रोडी सागरोपम की। अबाधाकाल जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट तीन हजार साल का।

समझ : कर्म बंधन के बाद जब तक फल देने के लिए उदय में नहीं आते और वह कर्म सत्ता में बने रहे, तब तक की अवधि को कर्म का 'अबाघाकाल' कहा जाता है। जिस कर्म की जितने क्रोडाक्रोडी सागरोपम की स्थिति बनती है, उतना ही 100 वर्ष का अबाघाकाल बंधता है। जैसे 10 क्रोडाक्रोडी सागरोपम की स्थिति का अबाघाकाल 10 X 100 यांनी 1000 वर्ष का अबाघाकाल। जिस कर्म की स्थिति 1 क्रोडकोडी सागरोपम के अंदर बँधती है, उसका अबाधाकाल अंतर्मुहूर्त का होता है।

---

2. दर्शनावरणीय कर्म का विस्तार

दर्शनावरणीय कर्म छह प्रकार से बंधता है।

1) दंसण पडिणियाए - चक्षु, अचक्षु, अवधि या केवल ये चार दर्शन या उस दर्शन के धारक के अवर्णवाद बोलने से।

2) दंसण निन्हवणियाए - दर्शन और दर्शनी के उपकार भूलने से।

3) दंसण अंतरायेणं - दर्शन और दर्शनी के चश्मा आदि साधनो में अंतराय डालने से।
4) दंसण आसायणाए - दर्शन और दर्शनी की अशातना करने से।
5) दंसण पओसेणं - दर्शन और दर्शनी के उपर द्वेष करने से।
6) दंसण विसंवायणाजोगेणं - दर्शनी के साथ झूठे झगड़े, विवाद करने से।

दर्शनावरणीय कर्म को नौ प्रकार से भुगता जाता है।

(1) निद्रा - वह सुख से सोता है, सुख से जागता है।
(2) निद्रा निद्रा - वह दुःख के साथ सोता है, दुःख के साथ जागता है।
(3) प्रचला - वह बैठे-बैठे सोता है।
(4) प्रचला प्रचला - वह बात करते करते, चलते-चलते सोता है।
(5) थिणद्धि (स्त्यानर्द्धि) निद्रा - दिन के दौरान सोचे हुए साधारण या असाधारण कार्य नींद में करना थिणद्धि निद्रा है। जब थिणद्धि निद्रा के कर्म का उत्कृष्ट उदय आता है, तब वज्रऋषभनाराच संघयण वाले जीव में वासुदेव का आधा बल आ जाता है। यदि कोई ऐसी नींद में आयुष्य का बंध करता है, तो वह जीव मरने के बाद नरक में जाता है। यह बात उत्कृष्ट बल की है। जघन्य और मध्यम बल भी हो सकता है और यदि उस में आयुष्य का बँध पड़े तो किसी भी गति में जा सकता है।
(6) चक्षु दर्शनावरणीय - आँख के माध्यम से किसी वस्तु का सामान्य बोध वह चक्षुदर्शन है। उस पर आवरण।
(7) अचक्षु दर्शनावरणीय - आँख के अलावा अन्य चार इंद्रियों और मन के माध्यम से किसी वस्तु के बारे में सामान्य बोध अचक्षु दर्शन है, उस पर आवरण।
(8) अवधि दर्शनावरणीय - आत्मद्रव्य के माध्यम से सीमित क्षेत्र में रहे हुए रूपी द्रव्यो का सामान्य ज्ञान अवधिदर्शन है, उस पर आवरण। अवधिज्ञान या विभंगज्ञान से पहले होने वाले सामान्य ज्ञान के उपर आवरण।
(9) केवल दर्शनावरणीय - संपूर्ण लोकालोक के सर्व द्रव्यों का सामान्य बोध होना वह केवलदर्शन, उस पर आवरण।

दर्शनावरणीय कर्म की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट तीस क्रोडाक्रोडी सागरोपम की। अबाधाकाल जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट तीन हजार वर्ष।

(जैसे ठंडी में घी जम जाता है, उसे हम थिणु घी कहते हैं, वैसे ही निद्रा के उदय में चेतना जम जाती है, चेतना घनीभूत हो जाती है, उसे थिणद्धि निद्रा कहते हैं।)

3. वेदनीय कर्म का विस्तार

वेदनीय कर्म के दो भेद- (1) शाता वेदनीय - जिससे सुख का वेदन होता है।
(2) अशाता वेदनीय - जिससे दुःख का वेदन होता है।

वेदनीय कर्म 22 प्रकार से बांधा जाता हैं, उसमें शातावेदनीय 10 प्रकार से बांधा जाता है।

(1) पाणाणुकंपयाए (प्राणी अनुकंपा) - दो इंद्रिय, तेइंद्रिय, चौरेंद्रिय, (विकलेन्द्रिय) जीवों पर दया/अनुकंपा करने से। **(2) भूयाणुकंपयाए (भूत अनुकंपा) -** वनस्पति के जीवों पर अनुकंपा करने से। **(3) जीवाणुकंपयाए (जीव के प्रति दया) -** पंचेन्द्रिय जीवों के प्रति दया रखने से। **(4) सत्ताणुकंपयाए (सत्त्व की करुणा) -** चार स्थावर (पृथ्वी, अप, तेउ, वाउ.) जीवों पर दया करने से। बहुणं पाणाणं भूयाणं जीवाणं सत्ताणं - बहुत सारे छकाय जीवों को। **(5) अदुःखणयाए -** दुःख न देने से। **(6) असोयणाए -** शोक न कराने से। **(7) अझुरणयाए -** नहीं तडपाने से, झुरणा या वियोग न कराने से। **(8) अटिप्पणयाए -** बूँद-बूँद आँसू न गीरवाने से। **(9) अपिट्टणयाए -** मार, पिटाई न करने से **(10) अपरियावणयाए -** परिताप या यातना न देने से।

अशातावेदनीय कर्म 12 प्रकार से बंधते है।

(1) परदुखणयाए - कोई एक प्राणी, भूत, जीव, सत्त्व को कष्ट देने से। **(2) परसोयणयाए -** छकाय जीवो को शोक कराए। **(3) परझुरणाए -** तड्पावे, झुरणा या वियोग कराए। **(4) परटिप्पणयाए -** बूँद-बूँद आँसू गीरवाने से। **(5) परपिट्टणयाए -** उसे मारे, पीटे। **(6) परपरियावणियाए -** जीव को परिताप या यातना देने से । पाणाणं भूयाणं जीवाणं सत्ताणं - अनेक छकाय जीवों को, **(7) दुखिणयाए -** कष्ट देवे। **(8) सोयणयाए -** शोक कराए। **(9) झुरणयाए -** तडपाये, झूरणा कराए या वियोग कराए। **(10) टीप्पणयाए -** रुलाए, बूँद-बूँद आँसू गिरवाए। **(11) पिट्टणयाए -** मारे, पीटे। **(12) परियावणयाए -** पीड़ा/ परिताप या यातना देवे।

वेदनीय कर्म की 16 प्रकृति, उस में शाता वेदनीय की 8 और अशाता वेदनीय की 8 । इस प्रकार वेदनीय कर्म 16 प्रकार से भुगतने पड़ते है।

शातावेदनीय कर्म आठ प्रकार से भुगतते है।

(1) मनोज्ञ शब्द - मन को अच्छे लगे, वैसे शब्द सुनने मिले। **(2) मनोज्ञ रूप -** मन को अच्छा लगे, वैसा रूप देखने मिले। **(3) मनोज्ञ गंध -** मन को अच्छी लगे, वैसी सुगंध मिले। **(4) मनोज्ञ रस -** मन को अच्छा लगे, वैसा रस मिले। **(5) मनोज्ञ स्पर्श -** मन को अच्छा लगे, वैसा स्पर्श मिले। **(6) मन सौख्य -** मन का सुख **(7) वचन सौख्य -** वचन का सुख **(8) काया सौख्य -** शरीर/काया का सुख।

अशाता वेदनीय कर्म आठ प्रकार से भुगतते है।

(1) अमनोज्ञ शब्द - जो शब्द मन को अच्छे नहीं लगते, वैसे शब्द सुनने को मिलते हैं। **(2) अमनोज्ञ रूप -** मन को अप्रिय रूप देखने मिलता है। **(3) अमनोज्ञ गंध -** मन को अप्रिय दुर्गंध सुंघने मिलती है। **(4) अमनोज्ञ रस -** मन को वह रस मिलता है जो उसे पसंद नहीं है। **(5) अमनोज्ञ स्पर्श -** मन को अप्रिय स्पर्श मिलते है। **(6) मन दुहया -** मन का दुःख **(7) वय दुहया -** वचन का दुःख **(8) काय दुहया -** शरीर का दुःख।

वेदनीय कर्म की स्थिति - शाता वेदनीय कर्म की स्थिति ज. दो समय की, उत्कृष्ट 15 क्रोडाक्रोडी सागरोपम की। अबाधाकाल जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट देढ़ हजार वर्ष।

अशाता वेदनीय कर्म की स्थिति जघन्य एक सागरोपम के सात भाग करे, उसके तीन भाग में एक पल्य का असंख्यातवाँ भाग कम। (3/7 सागरोपम में पल्य का असंख्यातवाँ भाग कम), उत्कृष्ट तीस क्रोडाक्रोडी सागरोपम की। अबाघाकाल जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट तीन हजार वर्ष।

4. मोहनीय कर्म का विस्तार

मोहनीय कर्म छह प्रकार से बंधते है- (1) तीव्र क्रोध (2) तीव्र मान (3) तीव्र माया (4) तीव्र लोभ (5) तीव्र दर्शन मोहनीय (6) तीव्र चारित्र मोहनीय।

मोहनीय कर्म पाँच प्रकार से (विस्तार से 28 प्रकार) भुगतते है- (1) समकित मोहनीय (2) मिथ्यात्व मोहनीय (3) मिश्र मोहनीय (4) कषाय चारित्र मोहनीय (5) नोकषाय चारित्र मोहनीय। इसकी विस्तार से 28 प्रकृतियाँ हैं।

1. दर्शन मोहनीय की तीन प्रकृति- (1) सम्यक्त्व मोहनीय - भगवान की

वाणी में श्रद्धा तो है लेकिन उसमें कुछ मलीनता भी होती है। **(2) मिथ्यात्व मोहनीय -** नौ तत्वों में श्रद्धा न होना। सुदेव, सुगुरु, सुधर्म के प्रति श्रद्धा न रखना। जिनेश्वर भगवंत ने बताए तत्त्व में अरुचि और अतत्त्व में रुचि रखना । **(3) मिश्र मोहनीय -** जिनवाणी में न रुचि, न अरुचि। जिनवाणी सत्य है या अन्यवाणी सत्य है, इसका निर्णय न ले पाना।

2. चारित्र मोहनीय की दो प्रकृतियाँ- (1) कषायचारित्र मोहनीय (2) नोकषाय चारित्र मोहनीय।

1 कषाय चारित्र मोहनीय की सोलह प्रकृतियाँ-

(1) अनंतानुबंधी क्रोध - पर्वत के दरार समान। **(2) अनंतानुबंधी मान -** पत्थर के स्तंभ के समान। **(3) अनंतानुबंधी माया -** बांस की जड़ के समान। **(4) अनंतानुबंधी लोभ -** 'कीरमजी[1] ' के रंग के समान।

ये चारों, गति नरक की करते है, स्थिति यावत् जीवन की, घात करते समकित की। **(5) अप्रत्याख्यानी क्रोध -** तलाव की दरार के समान। **(6) अप्रत्याख्यानी मान -** हड्डियों के स्तंभ के समान। **(7) अप्रत्याख्यानी माया -** भेड़ के सींग समान। **(8) अप्रत्याख्यानी लोभ -** यह नगर की गटर के कीचड़ समान , ये चारों, गति तिर्यंच की करते है, स्थिति एक वर्ष की, देश विरती यांने श्रावकपने का घात करते है। **(9) प्रत्याख्यानावरणीय क्रोध -** वेलु (नदी की रेत) के बीच एक रेखा की तरह। **(10) प्रत्याख्यानावरणीय मान -** लकड़ी के स्तंभ समान। **(11) प्रत्याख्यानावरणीय माया -** गौमूत्र के समान। **(12) प्रत्याख्यानावरणीय लोभ -** बैलगाडी के खंजन समान। ये चारों, गति मनुष्य की करते है, चार मास की स्थिति होती है, साधुपने का घात करते है। **(13) संज्वलन का क्रोध -** भरती से आए हुए पानी में लकीर (रेखा) के समान। **(14) संज्वलन का मान -** नेतर के स्तंभ समान। **(15) संज्वलन की माया -** बांस की छोई समान। **(16) संज्वलन का लोभ -** तितलियों[2] और हल्दी के रंग समान। ये चारों, गति देव की करते है, पंद्रह दिनों की स्थिति,

---

1. कीरमजी के रंग को जलाने पर उसकी राख भी उसी रंग की हो जाती है इतना गहरा रंग । 2. ततिली को हाथों से पकड़ा जाए तब उसके पंख का रंग उंगली पर आ जाता है। हल्दी के कपड़े को गीला करके धूप में रखने से उस पर लगे दाग उड जाते हैं वैसा।

यथाख्यात चारित्र की घात करते है।

नोकषाय[3] चारित्र मोहनीय की नौ प्रकृति है- (1) हास्य/हँसी - जिसके उदय से जीव कारण या बिना कारण हँसता है। **(2) रति** - जिसके उदय से जीव को सांसारिक और पाप कर्मों में आनंद आता है। **(3) अरति -** जिसके उदय से जीव को धार्मिक कार्यों में आलस्य और कंटाला आता है। **(4) भय -** जिसके उदय से भय/डर लगता है। **(5) शोक -** जिसके उदय से चिंता, उदासी या शोक उत्पन्न होता है। **(6) दुगंछा -** जिसके उदय से जीव को वस्तु या व्यक्ति के प्रति घृणा उत्पन्न होती है। **(7) स्त्रीवेद -** जिसके उदय से स्त्री को पुरुष समागम की इच्छा होती है। **(8) पुरुष वेद -** जिसके उदय से पुरुष को स्त्री समागम की इच्छा होती है। **(9) नपुंसक वेद -** जिसके उदय से नपुंसक को स्त्री-पुरुष दोनों के समागम की इच्छा होती है।

चारित्र मोहनीय की कुल 16 + 9 = 25 और दर्शन मोहनीय की 3 प्रकृतियाँ कुल 28 प्रकृतियाँ होती हैं।

मोहनीय कर्म की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट 70 क्रोडाक्रोडी सागरोपम की। अबाधाकाल जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट सात हजार वर्ष।

5. आयुष्य कर्म का विस्तार

आयुष्य कर्म सोलह प्रकार से बँधता है।

नरक का आयुष्य चार प्रकार से बँधता है - (1) महा आरंभ (2) महा परिग्रह, (3) कुणिम आहार (दारु - मांस का सेवन) (4) पंचेन्द्रिय जीवों का वध।

तिर्यंच का आयुष्य चार प्रकार से बाँधता है - (1) माया करने से (2) गाढ माया करने से। (3) झूठ/असत्य बोलने से (4) ग़लत तोल-नाप करने से।

मनुष्य का आयुष्य चार प्रकार से बँधता है - (1) भद्र (सरल) प्रकृति (2) विनय प्रकृति (3) शानुकोश : दयाभाव रखने से (4) अमत्सर : अहंकार रहित, तुच्छता रहित होने से।

देवता का आयुष्य चार प्रकार से बँधता है - (1) सराग संयम (सरागी भिक्षुत्व) का पालन करने से (2) संयमासंयम (श्रावकधर्म) का पालन करने से (3) बाल (अज्ञान) तप करने से (4) अकाम निर्जरा करने से।

नोकषाय: नोकषाय वास्तव में कषाय ही है। लेकिन वे स्पष्ट रूप में कषाय लगते नहीं। वे परंपरा से कषाय का कारण है। वे कषाय को उत्तेजित करते है। कषाय के लिए ईंधनरूप है ।

आयुष्य कर्म चार प्रकार से भुगता जाता है- (1) नारकी, नारकी का आयुष्य भुगतते है (2) तिर्यंच, तिर्यंच का आयुष्य भुगतते है (3) मनुष्य, मनुष्य का आयुष्य भुगतते है (4) देव, देव का आयुष्य भुगतते है।

आयुष्य कर्म की स्थिति - नारकी और देव की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट 33 सागर और पूर्व क्रोड वर्ष के तीसरे भाग से अधिक। मनुष्य और तिर्यंच की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट 3 पल्य और पूर्व क्रोड वर्ष के तीसरे भाग से अधिक। अबाधाकाल नहीं है।

6. नामकर्म का विस्तार

नाम कर्म के दो भेद, (1) शुभ नाम, (2) अशुभ नाम।
नाम कर्म आठ प्रकार से बँधता है।

शुभनाम कर्म चार प्रकार से बँधता है - (1) काया की सरलता (2) भाषा की सरलता (3) भावों की सरलता (4) अविसंवाद योग : झूठे झगडे, विवाद नहीं करने से।

अशुभनाम कर्म चार प्रकार से बँधता हैं - (1) काया की कुटिलता/वक्रता (2) भाषा की वक्रता (3) भावों की वक्रता (4) विसंवाद योग: झूठे झगड़े, कलह करने से।

नाम कर्म 28 प्रकार से भुगता जाता है। शुभ नाम कर्म 14 प्रकार से और अशुभ नाम कर्म 14 प्रकार से भुगता जाता है।

शुभ नाम कर्म चौदह प्रकार से भुगता जाता है -

(1) इष्ट शब्द - अच्छे शब्द। स्वयं से बोले गए शब्द दूसरों को सुनना अच्छा लगता है,

(2) इष्ट रूप - सुंदर रूप प्राप्त होता है, (गोरे भी हो और सुंदर भी हो, काला हो, लेकिन रूपवान हो, यानी सुंदर हो)।

(3) इष्ट गंध - सुगंधित शरीर प्राप्त होता है,

(4) इष्ट रस - शरीर के पुद्गल अच्छे रस वाले मिले,

(5) इष्ट स्पर्श - स्वयं का शरीर सुंदर स्पर्श वाला होता है,

(6) इष्ट गति - शरीर की चाल अच्छी हो ,

(7) इष्ट स्थिति - अच्छी शरीर स्थिति प्राप्त करते है(उठना-बैठना),

(8) इष्ट लावण्य - सुंदर शरीर का ओज, काला होने पर भी सलोना लगे,

(9) इष्ट यशोकीर्ति - शरीर के संयोग से विशिष्ट पराक्रम आदि करने से लोगों में यश ख्याति फैलती है।

(10) इष्ट उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषाकार पराक्रम - उनका हर कार्य अच्छा लगता है। अच्छी शारीरिक शक्ति प्राप्त करते है. **उत्थान :** काया की चेष्टा/खड़े होना। **कर्म:** आकुंचन प्रसारण, **बल:** शारीरिक शक्ति, **वीर्य:** आत्मा द्वारा निर्मित वीर्य/मानसिक शक्ति, पुरुषाकार **पराक्रम:** कार्य करना।

(11) इष्ट स्वर - मन को अच्छा लगे वैसा स्वर, कंठ मधुर मिलता है।

(12) कांत स्वर - बार-बार सुनने का मन करें ऐसा /कोमल स्वर,

(13) प्रिय स्वर - सामने वाले व्यक्ति को प्रिय लगे ऐसा स्वर।

(14) मनोज्ञ स्वर - सामने वाले व्यक्ति के मन को अच्छा लगे ऐसा स्वर।

अशुभ नाम कर्म चौदह प्रकार से भुगता जाता है - (1) अनिष्ट शब्द - स्वयं द्वारा बोले गए शब्द दूसरे सुनना पसंद नहीं करते **(2) अनिष्ट रूप -** स्वयं को कुरूप शरीर मिलता है, **(3) अनिष्ट गंध -** शरीर से दुर्गंध आती है **(4) अनिष्ट रस -** शरीर के पुद्गल खराब रस वाले होते है **(5) अनिष्ट स्पर्श -** स्वयं का शरीर रुक्ष आदि स्पर्श वाला होता है **(6) अनिष्ट गति -** शरीर की चाल अच्छी न हो **(7) अनिष्ट स्थिति -** शरीरिक स्थिति अच्छी नहीं होती **(8) अनिष्ट लावण्य -**बेडोल या कुरूप शरीर **(9) अनिष्ट यशोकीर्ति -** शरीर के संयोग से लोगों में अपयश और अपकीर्ति मिलती हैं **(10) अनिष्ट उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषाकार पराक्रम -** शारीरिक शक्ति खराब मिलती है। उनका हर कार्य खराब लगता है **(11) अनिष्ट स्वर -** ऐसी आवाज जो मन को पसंद नहीं आती **(12) अकांत स्वर -** ऐसी आवाज जिसे दोबारा सुनना अच्छा न लगे **(13) हीन स्वर -** दूसरों से हीन स्वर (मंद स्वर, महीन स्वर) **(14) दीन स्वर -** अप्रभावी, दयनीय आवाज मिलती है।

नाम कर्म की 93 प्रकृतियाँ: 14 पिंडप्रकृति विस्तार से मिलकर 65 प्रकृतियाँ

8 प्रत्येक प्रकृति	8 प्रकृति
त्रस दशक की	10 प्रकृति
स्थावर दशक की	10 प्रकृति
कुल प्रकृति	93

14 पिंड प्रकृति का विस्तार -

(जिस प्रकृति के विशेष विभाग होते है, उसे पिंड प्रकृति कहते है।)

पिंड प्रकृति	उत्तर प्रकृति	पिंड प्रकृति	उत्तर प्रकृति
1. गति नाम	4	8. संस्थान नाम	6
2. जाति नाम	5	9. वर्ण नाम	5
3. शरीर नाम	5	10. गंध नाम	2
4. शरीर अंगोपांग नाम	3	11. रस नाम	5
5. शरीर बंधन नाम	5	12. स्पर्श नाम	8
6. शरीर संघातन नाम	5	13. आनुपूर्वी नाम	4
7. संघायण नाम	6	14. विहायगति नाम	2

1. गति नाम के चार भेद - (1) नरक की गति (2) तिर्यच की गति (3) मनुष्य की गति (4) देव की गति। (4)

2. जाति नाम के पाँच भेद - (1) एकेन्द्रिय की जाति (2) दोईन्द्रिय की जाति (3) तेईन्द्रिय की जाति (4) चौरेंन्द्रिय की जाति (5) पंचेन्द्रिय की जाति।

3. शरीर नाम के पांच भेद - शरीर का अर्थ है जो समय-समय पर क्षीण होता है। **(1) औदारिक शरीर:** यह सड़ता है, गिरता है, बिखरता है, क्षत-विक्षत होता है, खराब होता है, मृत्यु के बाद मृतदेह पडा रहता है। उदार का अर्थ है प्रधान। जो तीर्थंकर, गणधर आदि सब को प्रधान ऐसी मोक्ष गति को प्राप्त करने में सहायक बनता है। **(2) वैक्रिय शरीर -** यह सड़ता नहीं है, गिरता नहीं है, बिखरता नहीं है, खराब नहीं होता है, मृत्यु के बाद यह कलेवर, विसराल (कपूर की गोटी के समान) हो जाता है उसे वैक्रिय शरीर कहते है। वैक्रिय का अर्थ है रूप परिवर्तन करने की शक्ति। भिन्न-भिन्न क्रियाओं द्वारा एक, अनेक, छोटे, बड़े, खेचर, भूचर, दृश्य, अदृश्य आदि भिन्न-भिन्न रूप बनाने की शक्ति। इस शरीर में हड्डियाँ, मांस आदि नहीं होते। **(3) आहारक शरीर -** 14 पूर्वी साधु को तप आदि करने से यह लब्धि उत्पन्न होती है। उसके द्वारा उत्तम स्फटिक समान पुद्गलों से जो शरीर बनता है, उसे आहारक शरीर कहा जाता है। जघन्य 1 हाथ न्युन, उत्कृष्ट 1 हाथ का शरीर बनाते है। **(4) तैजस शरीर -** जिसके कारण शरीर में उष्णता बनी रहती है और भोजन का पाचन करता है वह तैजस शरीर। तेजोलब्धि से तेजोलेश्या (उष्ण या शीत पुद्गल) को छोड़ने में कारणभूत शरीर को तैजस शरीर कहा जाता है। **(5) कार्मण शरीर -**

जिसमें आठों कर्मों के स्कंध संग्रहित होते हैं, वह कार्मण शरीर। (14)

4. शरीर अंगोपांग के तीन भेद - अंगोपांग : जिस कर्म के उदय से जीव को शरीर के हाथ, पैर, सिर आदि अंग और अंगुलियाँ, नाखून आदि उपांग मिलते हैं। (1) औदारिक शरीर अंगोपांग (2) वैक्रीय शरीर अंगोपांग (3) आहारक शरीर अंगोपांग, (तैजस और कार्मण शरीर सूक्ष्म होने के कारण अंगोपांग नहीं होते।) (17)

5. शरीर बंधन नाम के पांच भेद - बंधन नाम : शरीर के योग्य एकत्रित पुद्गलों को ग्रहण करके शरीर का निर्माण करने हेतु उन्हें जोडना। (1) औदारिक शरीर बंधन (2) वैक्रिय शरीर बंधन (3) आहारक शरीर बंधन (4) तैजस शरीर बंधन (5) कार्मण शरीर बंधन। (22)

6. शरीर संघातन नाम के पांच भेद - संघातन नाम - अलग-अलग शरीर बनाने के लिए उस शरीर योग्य पुद्गल एकत्रित होते हैं वह संघातन नाम है। (1) औदारिक शरीर संघातन (2) वैक्रिय शरीर संघातन (3) आहारक शरीर संघातन (4) तैजस शरीर संघातन (5) कार्मण शरीर संघातन। (27)

7. संघयण (संहनन) नाम के छह भेद - संघयण : शरीर की शक्ति/ मजबूताई। **(1) वज्रऋषभनाराच संघयण -** वज्र यानी कील, ऋषभ यानी पट्टा, नाराच यानी दोनों बाजू में मर्कटबंध। जिस शरीर की संरचना में दो हड्डियों को दोनों बाजू से मर्कटबंध से बांधा हो, उस पर हड्डियो का पट्टा होता है, उसे कील जैसी हड्डी से मजबूत बांधा हो वैसा मजबूत संघयण। **(2) ऋषभनाराच संघयण -** इस संघयन ऊपर की तरह पर इस में कील नहीं होती। **(3) नाराच संघयण -** इस में दोनों तरफ मर्कटबंध होता है। **(4) अर्धनाराच संघयण -** एक बाजु से मर्कटबंध और दूसरी ओर केवल कील होती है। **(5) किलकु (किलिका) संघयण -** दोनों हड्डियाँ एक कील से जुड़ी होती हैं। **(6) छेवटुं (सेवार्त्त) संघयण:** दोनों हड्डियाँ सटी हुई/ बाजु-बाजु में होती हैं, कील नहीं होती। (33)

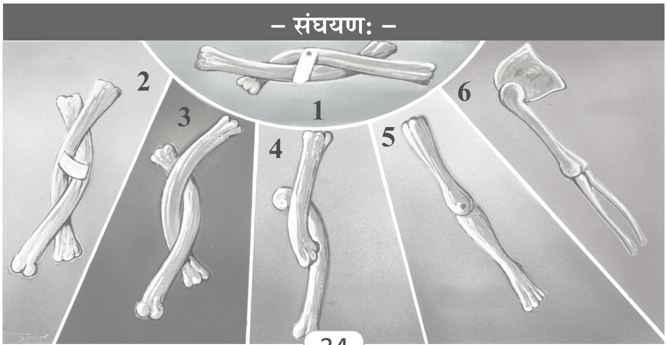

8. संस्थान नाम के छह भेद - संस्थान : आकार। **(1) समचतुरंस्त्र संस्थान -** पैरों से सिर तक सुंदर शरीर। पालथी के साथ बैठी हुई आकृति चारों ओर से एक जैसी, समान है। **(2) न्याग्रोध परिमंडल संस्थान -** कमर से सिर तक शोभायमान शरीर। **(3) सादी संस्थान -** पैरों से कमर तक सुडौल शरीर। **(4) वामन संस्थान -** हाथ, पैर, सिर का आकार नाटा होता है। **(5) कुब्ज संस्थान -** हाथ, पैर, सिर, गर्दन कम-अधिक प्रमाण वाले होते हैं। अन्य अवयव सुंदर होते है। **(6) हुंड संस्थान -** सभी अवयव अशुभ होते हैं। (39)

9. वर्ण के पाँच भेद - जिनके उदय से जीव को भिन्न-भिन्न वर्ण वाला शरीर प्राप्त होता है। (1) काला (2) नीला (हरा) (3) लाल (4) पीला (5) सफेद। (44)

10. गंध के दो भेद - जिसके उदय से जीव के शरीर में भिन्न-भिन्न गंध होती है। (1) सुरभिगंध (2) दुरभिगंध (46)

11.रस के पांच भेद हैं - जिनके उदय से जीव के शरीर में पुद्गलों का विविध रस होता हैं। (1) तीखा (2) कड़वा (3) तूरा (4) खट्टा (5) मीठा। (51)

12. स्पर्श के आठ भेद - जिसके उदय से जीव के शरीर का विभिन्न स्पर्श होता हैं। (1) मुलायम (2) कर्कश (3) हल्का (4) भारी 5) गर्म (6) ठंडा (7) लूखा (8) चिकना। (59)

13. आनुपूर्वी के चार भेद - आनुपूर्वी : जीव जब मृत्यु पा कर अन्य गति में जाता है, तब रास्ते में विग्रहगति में साथ रहता है और मोड लेने में मदद करता है। (1) नरक आनुपूर्वी (2) तिर्यंच आनुपूर्वी (3) मनुष्य आनुपूर्वी (4) देव आनुपूर्वी। (63)

14. विहायगति नाम के दो भेद - (1) प्रशस्त विहायगति अर्थात् गंध हस्ति के समान शुभ चलने की गति (2) अप्रशस्त विहायगति - अर्थात् ऊँट की तरह अशुभ चलने वाली गति। (65)

प्रत्येक प्रकृति 8 - (1) अगुरुलघु नाम - कर्म के उदय से जीव का शरीर न भारी, न हल्का होता है। **(2) उपघात नाम -** जिस कर्म के उदय से जीव स्वयं के अवयवों से क्लेश पाता है, अवयव अडचन रुप लगते हैं। रसोली, छट्ठी उंगली आदि। **(3) पराघात नाम -** जिसके उदय से जीव दूसरों के लिए अजेय हो जाता है, दूसरों को प्रभावित करता है। **(4) उच्छवास नाम -** जिसके उदय से श्वास के जरिए हवा ग्रहण कर उच्छवास के जरिए छोड़ी जाती है। **(5) उद्योत नाम -** जिसके उदय से जीव का शरीर शीतल प्रकाश करता है, जैसे चंद्र का पृथ्वी काय का शरीर **(6)**

आताप नाम - जिसके उदय से शरीर तो ठंडा रहता है लेकिन आताप रूप प्रकाश करता है। जैसे सूर्यमंडल का पृथ्वीकाय का शरीर। **(7) तीर्थंकर नाम -** जिसके उदय से तीर्थंकर की पदवी मिलती है। **(8) निर्माण नाम -** जिसके उदय से शरीर के अंगोपांग अपने स्थानपर व्यवस्थित मिलते हैं। (73)

त्रस दशक - (1) त्रस नाम - जिसके उदय से जीव को स्वयं हलन चलन करने योग्य शरीर प्राप्त होता है। **(2) बादर नाम -** जिसके उदय से बादरता (स्थुलता) प्राप्त होती है। **(3) पर्याप्त नाम -** जिसके उदय से जीव को उचित पर्याप्ति की पुर्ण प्राप्ति होती है। **(4) प्रत्येक नाम -** जिसके उदय से जीव को अपना स्वतंत्र शरीर प्राप्त होता है। **(5) स्थिर नाम -** जिसके उदय से दांत, हड्डियां आदि अंग अपनी जगह पर स्थिर रहते हैं। **(6) शुभ नाम -** जिसके उदय से शरीर शुभ होता है (नाभि के ऊपर का भाग)। **(7) सौभाग्य नाम -** जिसके उदय से जीव दूसरों के प्रितीपात्र बनता है। **(8) सुस्वर नाम -** जिसके उदय से स्वर-कंठ अच्छा होता है। **(9) आदेय नाम -** जिसके उदय से जीव के वचन मान्य, आदरणीय होते है। **(10) यशोकीर्ति नाम -** इसके उदय से संसार में यश और कीर्ति फैलती है। (83)

स्थावर दशक - (1) स्थावर नाम - जिसके उदय से जीव स्वयं हलन चलन न कर सकें ऐसा एकेन्दिय शरीर मिलता है। **(2) सूक्ष्म नाम -** जिसके उदय से शरीर सूक्ष्म होता है। **(3) अपर्याप्त नाम -** जिसके उदय से उचित पूर्ण पर्याप्ति की प्राप्ति नहीं होती। **(4) साधारण नाम -** एक शरीर में अनंत जीव साथ में रहे, वैसा शरीर मिलता है। स्वतंत्र शरीर नहीं मिलता। **(5) अस्थिर नाम -** जिसके उदय से जीभ, त्वचा आदि अवयव अस्थिर होते हैं। **(6) अशुभ नाम -** जिसके उदय से अशुभ शरीर की प्राप्ति होती है। (नाभि के नीचे का भाग)। **(7) दुर्भाग्य नाम -** जिसके उदय से जीव दूसरें जीवों को अप्रिती पात्र बनता है। **(8) दुःस्वर नाम -** जिसके उदय से स्वर ख़राब या कर्कश आदि होता है। **(9) अनादेय नाम -** जिसके उदय से जीव के वचन अमान्य, अनादरणीय होते हैं। **(10) अयशोकीर्ति नाम -** जिसके उदय से संसार में अपकीर्ति और अपयश फैलता है। (93)

नाम कर्म की 93 प्रकृति संपूर्ण।

नाम कर्म की स्थिति जघन्य आठ मुहूर्त, उत्कृष्ट 20 क्रोडाक्रोडी सागरोपम। अबाधाकान जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट दो हजार वर्ष।

7. गोत्र कर्म का विस्तार

गोत्र कर्म के दो भेद, (1) ऊच्च गोत्र, (2) नीच गोत्र।

गोत्र कर्म सोलह प्रकार से बँधता है। उसमें ऊच्च गोत्र आठ प्रकार से तथा नीच गोत्र आठ प्रकार से बंधता है।

ऊच्च गोत्र आठ प्रकार से बँधता है- (1) जाति अमद - मातृपक्ष को जाति कहते हैं। इस पर अभिमान घमंड न करें। **(2) कुल अमद -** पितृपक्ष को कुल कहा जाता है। इसका मद न करें। **(3) बल अमद -** शरीर की विषिष्ट शक्ति पर घमंड न करें। **(4) रूप अमद -** शरीर के रूप पर अभिमान न करें। **(5) तप अमद -** शरीर की तप शक्ति का मद न करें। **(6) सूत्र अमद -** श्रुत (सूत्र) ज्ञान का मद न करें। **(7) लाभ अमद -** लाभ प्राप्ति का मद न करें। **(8) ऐश्वर्य अमद -** धन, वैभव आदि ऐश्वर्य का मद न करें।

नीच गोत्र आठ प्रकार से बँधता है। (1) जातिमद, (2) कुलमद, (3) बलमद, (4) रूपमद, (5) तपमद, (6) सूत्रमद, (7) लाभमद, (8) ऐश्वर्यमद। इस प्रकार आठ का मद करें।

गोत्र कर्म की सोलह प्रकृतियाँ,

ऊच्च गोत्र की आठ प्रकृतियाँ, नीच गोत्र की आठ प्रकृतियाँ।

ऊच्च गोत्र आठ प्रकार से भुगता जाता है: (1) जाति-विशिष्ट - ऊच्च जाति में जन्म होता है। **(2) कुल विशिष्ट -** ऊच्च कुल में जन्म होता है। **(3) बल विशिष्ट -** विशेष शारीरिक बल प्राप्त होता है। **(4) रूप विशिष्ट -** विशिष्ट रूप वाला शरीर मिलता है। **(5) तप विशिष्ट -** तप करने की विशेष शक्ति प्राप्त होती है। **(6) सूत्र विशिष्ट -** विशेष ज्ञान का लाभ होता है। **(7) लाभ विशिष्ट-** विशेष प्रकार के ऊच्च संयोग प्राप्त होते हैं। **(8) ऐश्वर्य विशिष्ट -** धन, वैभव आदि विशेष ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है।

नीच गोत्र आठ प्रकार से भुगते जाते है - (1) जाति विहीन, (2) कुल विहीन, (3) बल विहीन, (4) रूप विहीन, (5) तप विहीन, (6) सूत्र विहीन, (7) लाभ विहीन, (8) ऐश्वर्य विहीन।

गोत्र कर्म की स्थिति जघन्य आठ मुहूर्त, उत्कृष्ट 20 क्रोडाक्रोडी सागरोपम। अबाधाकाल जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट दो हजार वर्ष।

8. अंतराय कर्म का विस्तार

अंतराय कर्म पांच प्रकार से बँधता है: (1) दानांतराय - दान देने में अंतराय देने से। **(2) लाभांतराय -** लाभ लेने में अंतराय देने से। **(3) भोगांतराय -** एक बार भुगतने वाली वस्तु में अंतराय देने से। **(4) उपभोगांतराय -** बार-बार भुगते जानेवाली वस्तु में अंतराय देने से। **(5) वीर्यान्तराय -** वीर्य शक्ति के उपयोग में अंतराय देने से।

अंतराय कर्म की पांच प्रकृति, पांच प्रकार से भुगती जाती है, जो उपर बतायी गयी है।

अंतराय कर्म की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट 30 क्रोडाकोडी सागरोपम है। अबाधाकाल जघन्य अंतर्मुहूर्त, उत्कृष्ट तीन हजार वर्ष।

(1)आठ कर्मों के क्रम का कारण - (1) समस्त शास्त्रों का विचार ज्ञान के द्वारा ही होता है। सकल लब्धियाँ भी ज्ञान द्वारा ही प्रगट होती है और मोक्ष प्राप्ति के समय में भी ज्ञान का ही उपयोग होता हैं। इसलिए ज्ञान गुण को प्रधानता दी गई है। और उसे ढकने वाला ज्ञानावरणीय कर्म प्रथम रखा गया है। (2)ज्ञान उपयोग पूर्ण होने पर तुरंत दर्शन का उपयोग होता है, इसलिए दर्शनावरणीय कर्म दूसरे नंबर पर है।

(3) इन दोनों कर्मों के क्षयोपशम की हिनाधिनता के कारण सुख-दुःख की प्राप्ति होती है, इसलिए वेदनीय कर्म तीसरा है। (4) सुख-दुःख राग-द्वेष को जन्म देता है, इसलिए मोहनीय कर्म चौथे नंबर पर है। (5) मोह से भ्रमित आत्मा ऊंच-नीच गति में अपने आयुष्य का बंध करते है, इसलिए पांचवें नंबर पर आयुष्य कर्म है। (6) आयुष्य के कारण जीव को गति, जाति आदि की प्राप्ति होती है, इसलिए नाम कर्म छट्ठे नंबर पर है। (7) जाति आदि में ऊच्च-नीचता प्राप्त होती हैं, इसलिए सातवे नंबर पर गोत्र कर्म है। (8) गोत्र के अनुसार दान, लाभ आदि की प्राप्ति और वियोग होता हैं, इसलिए आठवां अंतराय कर्म है।

(2) कर्म दलिको का वितरण - जीव समय-समय पर 7 कर्मों को बाँधता है। जब आयुष्य कर्म बाँधता हैं, तब आठ कर्मों को बाँधता हैं। यह

आयुष्य कर्म संपूर्ण भव में एक ही बार बँधता है। विभिन्न कारणों से कर्म के पुद्गल आत्मा से बँधते हैं, तब कौनसे कर्म को कितना भाग मिलता है? (1) सबसे छोटा हिस्सा आयुष्य कर्म को मिलता है, क्योंकि उसकी स्थिति कम है। (2) उसके बाद नाम-गोत्र को परस्पर समान और (3) इसके बाद ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अंतराय को परस्पर समान और उपरोक्त दोनों से अधिक भाग मिलता हैं, क्योंकि उनकी स्थिति विशेष है। उससे मोहनीय कर्म को अधिक भाग मिलता है, क्योंकि उसकी स्थिति विशेष है। वेदनीय कर्म को सबसे अधिक भाग मिलता है, उसकी स्थिति कम है, परन्तु उसमें पुद्गल ज्यादा होते है, तो ही अपना फल दिखा सकते है, अनुभव कर सकते है। इसलिए सबसे अधिक भाग वेदनीय कर्म को मिलता है।

(3) अनादि कर्म का अंत - कर्म अनादि से हैं, फिर भी कर्मो का अंत हो सकता है। जैसे खदान में सोना और मिट्टी अनादि काल से एक साथ रहने के बाद भी प्रयोग द्वारा उसे शुद्ध करके उसमें से मिट्टी आदि अशुद्धियाँ दूर कर दी जाती हैं। उसी प्रकार ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप की आराधना द्वारा आत्मा को शुद्ध बनाकर सिद्ध बनाया जा सकता है।

(4) कर्मो की विभिन्न अवस्थाएँ

1. बंध, 2. उद्वर्तन, 3. अपवर्तन, 4. सत्ता, 5. उदय, 6. उदिरणा, 7. संक्रमण, 8. उपशम, 9. निद्धत्त, 10. निकाचित, 11. क्षयोपशम, 12. क्षय

(1) बंध - मिथ्यात्व आदि कारणों से जीव और कर्मो का एकमेक होना ही बंध है। जैसे दूध में पानी या लोहे में आग।

(2) उद्वर्तन - जीव के परिणामों के कारण पूर्व बँधे कर्मों की स्थिति और अनुभाग (रस) को बढाना यह उद्वर्तन।

(3) अपवर्तन - जीव के परिणामों के कारण पूर्व बँधे कर्मो की स्थिति और अनुभाग (रस) को कम करना यह अपवर्तन।

(4) सत्ता - बँधा हुआ कर्म उदय में न आये, तब तक जो कर्म की जितनी स्थिति होती है, तब तक वे आत्मा के साथ बँधे रहते है, फल दिये बीना रहे, उसे सत्ता कहते हैं।

(5) उदय - कर्मो का अबाधाकाल पूरा होने पर फल देने लगे उसे उदय कहते हैं। उदय के दो प्रकार है - **(1) प्रदेशोदय -** कर्मों का उदय जो आत्मप्रदेश में आकर क्षय हो जाता है लेकिन जीव द्वारा अनुभव नहीं किया जाता है उसे प्रदेशोदय कहा जाता है। प्रदेशोदय में विपाकोदय की भजना (हो भी सकता है और नहीं भी)। **(2) विपाकोदय -** जिस कर्म का फल शुभ या अशुभ रुप में जीव को अनुभव में आता है वह विपाकोदय है। विपाकोदय में प्रदेशोदय नियमा (होता ही) हैं।

(6) उदिरणा - भविष्य में उदय होने वाले कर्म को तप आदि के द्वारा विशेष प्रयत्न करके खिंचकर उदय में लाना उसे उदिरणा कहते हैं। जो कर्म उदय आवलिका में न आये हो उसी की उदीरणा हो सकती है।

(7) संक्रमण - एक कर्म प्रकृति का दूसरें सजातीय कर्म प्रकृति में पलटना संक्रमण है। जैसे अशाता का शाता में संक्रमण होता है। लेकिन ज्ञानावरणीयकर्म का दर्शनावरणीयकर्म में संक्रमण नहीं होता।

(8) उपशम - कर्मों के पुद्गलों को इस प्रकार दबा कर रखना कि वे उदय में ना आये और उनकी उदीरणा भी न हो, वह उपशम है। उपशम केवल मोहनीय कर्म का ही होता है।

(9) निद्धत्त - जो कर्म प्रबल, तीव्र रस से, गाढ बंधे हुए हों और जिनमें उद्वर्तन, अपवर्तन के सिवा संक्रमण आदि न हो सकें, उसे निद्धत्त कहते हैं।

(10) निकाचित - जो कर्म तीव्र रस से, गाढे (गाढ) बंधे होते हैं, जिनमें कोई उद्वर्तन, अपवर्तन या संक्रमण आदि नहीं हो सकता। जिसके फल अवश्य भुगतने पड़ते है उसे निकाचित कर्म कहते हैं।

(11) क्षयोपशम - जो कर्म उदय में आते है उसे विपाकोदय से भुगत लेना और जो सत्ता में हैं उसका उपशम करना वह क्षयोपशम। क्षयोपशम केवल चार घाती कर्मों का ही होता है।

(12) क्षय - आत्मप्रदेशों से कर्म पुद्गलों का अलग होना। क्षय आठों कर्मों का हो सकता है।

।। इति श्री आठ कर्मों की प्रकृति ।।

आठ कर्मों का कोष्टक

क्रम	कर्म का नाम	किसके समान	कौन से गुण को रोकता है ?	बाँधना	भुगतना	जघन्य स्थिति	उत्कृष्ट स्थिति
1	ज्ञानावरणीय	आंखों पर पट्टे समान	अनंत ज्ञान गुण	6	5/10	अंतर्मुहूर्त	30 क्रो. क्रो. सागरोपम
2	दर्शनावरणीय	राजा के द्वारपाल समान	अनंत दर्शन गुण	6	9	अंतर्मुहूर्त	30 क्रो. क्रो. सागरोपम
3	वेदनीय	शहद से लिपटी तलवार समान	अनंत अव्याबाध आत्मिक सुख	22	16	दो समय	30 क्रो. क्रो. सागरोपम
4	मोहनीय	मदिरापान समान	वीतरागता	6	5/28	अंतर्मुहूर्त	70 क्रो. क्रो. सागरोपम
5	आयुष्य	बेडी समान	अक्षय स्थिति	16	4	अंतर्मुहूर्त	33 सागरोपम
6	नाम	चित्रकार समान	अमूर्त	8	28/93	8 मुहूर्त	20 क्रो. क्रो. सागरोपम
7	गोत्र	कुंभार के चाक समान	अगुरुलघु	16	16	8 मुहूर्त	20 क्रो. क्रो. सागरोपम
8	अंतराय	राजा के भंडारी समान	अनंतवीर्य	5	5	अंतर्मुहूर्त	30 क्रो. क्रो. सागरोपम

छह आरे (कालचक्र) के भाव

•जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति, वक्षस्कार-2•

अनंता अलोक के बीच जिसमें हम रहते है, वह लोक है। लोक के तीन भाग हैं: नीचे अधोलोक, मध्य में तिच्छालोक/मध्यलोक और ऊपर उर्ध्वलोक। तिर्च्छालोक में असंख्य द्वीप और असंख्य समुद्र हैं। इसके मध्य में ढाईद्वीप है, इस ढाईद्वीप में सूर्य और चंद्र घुमते रहने से दिन और रात होते हैं।

इस ढाईद्वीप में पंद्रह कर्मभूमि हैं। जिसमें से पांच महाविदेह क्षेत्रों में काल एक समान होता है। परंतु पाँच भरत और पाँच इरवत क्षेत्रों में काल सदैव एक जैसा नहीं होता। ऊतरते काल को अवसर्पिणीकाल तथा चढते काल को उत्सर्पिणीकाल कहा जाता है। ये दोनों मिलाकर एक कालचक्र बनता हैं। जिस प्रकार बैल गाड़ी के पहियों के भाग को आरा कहा जाता है, उसी प्रकार कालचक्र के विभाग को आरा कहा जाता है। अवसर्पिणी के **6** और उत्सर्पिणी के **6** मिलकर बारह आरों का एक कालचक्र बनता हैं। ऐसे कालचक्र एक के बाद एक अनंत हो गए हैं और भविष्य में भी अनंत होते रहेंगे। इन काल और कालचक्र की जानकारी छह आरे के थोकडे में दी गई है।

दस क्रोडाक्रोडी सागरोपम के अवसर्पिणी के छह आरे और दस क्रोडाक्रोडी सागरोपम के उत्सर्पिणी के छह आरे हैं। कुल **20** क्रोडाक्रोडी सागरोपम का एक कालचक्र बनता हैं। (काल का माप और अवगाहना की जानकारी को समझने के लिए श्रेणी आठ तत्त्व विभाग देखें)।

यहाँ हम सबसे पहले अवसर्पिणी काल के छह आरे को जानेंगे।

अवसर्पिणीकाल, जिसमें जीवों का संघयण, संस्थान, आयुष्य, अवगाहना, उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पौरुषाकार और पराक्रम क्रमशः धीरे-धीरे कम होते जाते हैं, पुद्गलों का रंग, गंध, स्वाद और स्पर्श भी कम होता जाता है, अशुभ भाव बढते जाते है।

•पहला आरा•

पहला आरा चार क्रोडाक्रोडी सागरोपम का, जिसे सुषम सुषम कहा जाता है। जिसका मतलब होता है बेहद सुखमय। इस आरे की शुरुआत में शरीर की ऊंचाई/अवगाहना 3 गाउ की, उतरते आरे में 2 गाउ की होती हैं। इस आरे की शुरुआत में आयुष्य 3 पल्य का, उतरते आरे में 2 पल्य का होता है। इस आरे की

शुरुआत में शरीर में **256** पसलियाँ और उतरने पर 128 पसलियाँ होती हैं। वज्रऋषभनाराच संघयण एवं समचतुरंस्त्र संस्थान होता है। इस आरे में अठ्ठमभक्त (तीन दिनके बाद) आहार करने की इच्छा होती है, तब शरीर के अनुसार आहार करते है। जमीन की सरसाई (रस) सक्कर समान, उतरते आरे में जमीन की सरसाई चीनी जैसी। इस आरे में दस प्रकार के कल्पवृक्ष हैं, जो जुगलियों की आवश्यकताओं को पूरा करते हैं। इस दस प्रकार के कल्पवृक्ष के पास जो फल होते है वही फल युगलिक प्राप्त करते है। जिसका मन में चिंतन होता है, वह पाने में असमर्थ होते है।

दस कल्पवृक्षों के नाम का अर्थ - (1) मधुर रसवाले फल का कल्पवृक्ष। (2) रत्नजडीत भाजन (बर्तन), पात्र के कल्पवृक्ष। (3) 49 प्रकार के वाजिंत्र के कल्पवृक्ष। (4) रत्नमय दीपों के कल्पवृक्ष। (5) सूर्य के समान उजाला देने वाले कल्पवृक्ष। (6) चित्रकला सहित पुष्पमाला के कल्पवृक्ष। (7) मन को प्रसन्न करने वाले स्वादिष्ट भोजन के कल्पवृक्ष। (8) रत्नजड़ित आभूषणों के कल्पवृक्ष। (9) आवास (मकान) के कल्पवृक्ष। (10) रत्नजड़ित वस्त्रों के कल्पवृक्ष। ये दस प्रकार के कल्पवृक्ष (वनस्पति काय के) युगलिक को सुख देते है।

इस आरे में युगलिक का आयुष्य छह महीने बाकी रहता हैं, तब युगलिक परभव का आयुष्य बाँधते है। तब युगलानी जुड़वां बच्चे को जन्म देती है। 49 दिनों तक जुड़वां बच्चे की देखभाल करती है। युगल-युगलानी को क्षण मात्र का भी वियोग नहीं पड़ता। एक छींकता है और दूसरा जम्हाई लेता है या डकार लेता है, तब मरकर देवगति में जाते हैं। (युगलिक के क्षेत्र में स्निग्धता- सरसता के कारण शरीर गल जाता है।) गति एक मात्र देव की करते है। इस आरे में कोई वेरभाव नहीं, कोई द्वेष नहीं, कोई ईर्ष्या नहीं, कोई बुढापा नहीं, कोई बीमारी नहीं, कोई कुरूपता नहीं, परिपूर्ण अंग-उपांग से सुख भुगतते है। यह पूर्व भव में किए गए दान-पुण्य का फल होता है।

•दूसरा आरा•

पहला आरा खत्म होता है और दूसरा आरा शुरू होता है, तब रंग, गंध, स्वाद और स्पर्श की मात्रायें अनंत रूप से कम हो जाती हैं। दूसरा आरा तीन क्रोडाक्रोडी सागरोपम का होता है। यह आरा सुषम याने जिसका अर्थ है सुखमय। इस आरे के शुरूआत के समय में शरीर की अवगाहना 2 गाउ की, आरे के अंत

समय में 1 गाउ की होती है। आयुष्य 2 पल्योपम का, उतरते आरे में 1 पल्योपम का, वज्रऋषभनाराच संघयण और समचतुरंस्त्र संस्थान। आरे के प्रारंभ में शरीर में 128 पसलियाँ और आरे के अंत में 64 पसलियाँ होती हैं। इस आरे में छट्ठभक्ते (दो दिन के बाद) आहार की इच्छा होती है। अपने शरीर प्रमाण आहार करते है। जमीन की सरसाई चीनी के बराबर है, आरे के अंत समय में गुड समान होती है। जैसा कि पहले आरे में कहा गया है, दस प्रकार के कल्पवृक्ष मनवांछित सुख देते हैं।

जब जुगलियों का आयुष्य छह महीने शेष रहेता है, तब जुगलिया परभव के आयुष्य को बांधते है। तब जुगलानी एक जोड़े को जन्म देती है। 64 दिन तक जुडवे की प्रतिपालना करते है। जुगल-जुगलानी को एक क्षण का भी वियोग नहीं होता। एक छींकता है, दूसरा जम्हाई लेता है या डकार लेता है, तब मरकर देवगति में जाते है। गति देव की ही करते है। इस आरे में कोई बैरभाव नहीं, कोई ईर्ष्या नहीं, कोई बीमारी नहीं, कोई जरा नहीं, कुरूपता नहीं, परिपूर्ण अंग-उपांग के सुख भुगतते है। यह पूर्व भव में किए गए दान-पुण्य का फल होता है।

•तीसरा आरा•

जब दूसरे आरे का अंत होता है और तीसरा आरा शुरू होता है तब रंग, गंध, स्वाद, स्पर्श की मात्रायें अनंत अनंत हीन हो जाती हैं। तीसरा आरा दो क्रोडाक्रोडी सागरोपम का है, जिसका नाम सुषम दुषम है, जिसका अर्थ है अधिकतम् सुख और थोड़ा दुख। आरे की शुरूआत में शरीर की अवगाहना 1 गाउ की होती है, आरे के अंत समय में शरीर की अवगाहना पाँच सौ धनुष होती है। आरे के शुरूआत के समय में 1 पल्योपम का आयुष्य और आरे के अंत समय में 1 करोड़ पूर्ववर्ष का आयुष्य होता है। इस आरे में जुगलकाल तक वज्रऋषभनाराच संघयण, और समचतुरंस्त्र संस्थान होता है। आरे के अंत समय में छह संघयण और छह संस्थान होते हैं। शरीर में 64 पसलियाँ होती हैं, आरे के अंत समय में 32 पसलियाँ होती हैं। इस आरे में चौथभक्त (एक दिन के बाद) आहार की इच्छा होती है। तब शरीर प्रमाण आहार ग्रहण करते है। भूमि की सरसाई गुड समान, आरे के अंत समय में जमीन की सरसाई अच्छी होती है। इस आरे में युगलिक काल तक दस प्रकार के कल्पवृक्ष मनवांछित सुख प्रदान करते है, ऊपर प्रथम आरे में कहा गया, वैसे।

जब जुगलियों का छह महीने का आयुष्य शेष होता है, तब जुगलिया परभव के आयुष्य का बंध करते है। फिर जुगलानी एक जोड़े को जन्म देती है। जुगलानी उस

जोडे का 79 दिन तक प्रतिपालन करती है। जुगल-जुगलानी को एक क्षण का भी वियोग नहीं होता। एक छींकता या जम्हाई लेता है दुसरा डकार लेता है तो उसकी मृत्यु हो जाती है। ये तीन आरे जुगलिया के होते है। सिर्फ युगल धर्म ही होता हैं। इस तीसरे आरे में, जुगलियाकाल तक एक देव गति को जानना। इस युगलिक काल में कोई बैरभाव नहीं, कोई ईर्ष्या नहीं, कोई बीमारी नहीं, कोई कुरूपता नहीं, परिपूर्ण अंग-उपांग का सुख भुगतते है। यह पूर्व भव में किए गए दान-पुण्य का फल होता है।

इस तीसरे आरे के एक पल्य का आठवे हिस्से जितना काल बाकी रहा, तब कल्पवृक्षों की शक्ति कम होने लगी। इस वजह से युगलिकों के बीच द्वेष और कषाय बढ़ने लगे और अंदरूनी झगड़े शुरू हो गए। उनके झगड़ों को निपटाने के लिए 'सुमति' कुलकर (प्रशासक/मांडलिक राजा) के रूप में नियुक्ती कि गई। ऐसे कुलकर पंद्रह हुए। पहले पांच कुलकरों के लिए 'ह'कार दंड' अर्थात् 'हं' कहने के बाद व्यक्ति दोबारा अपराध नहीं करता था। छट्ठे से दसवें ऐसे पाँच कुलकरों तक 'म' कार दंड ''ऐसा मत करो'' ऐसा कहा जाता था। 11वें से 15वें कुलकर तक 'धिक्कार' दंड, अर्थात् "आपने ऐसा काम किया? तुम्हें धिक्कार है" इतना कहा जाता था। 14वें कुलकर नाभिराजा, 15वें कुलकर ऋषभदेव (अवसर्पिणी काल के पहले तीर्थंकर) बने।

तृतीय आरे के शेष 84 लाख पूर्व, 3 वर्ष और 8॥ महिने जब शेष रहे, तब पांचवे अनुत्तर विमान सर्वार्थसिद्ध में 33 सागरोपम का आयुष्य भुगतने के बाद वहाँ से च्यवन करके नाभिकुलकर राजा के घर और मरुदेवी माता की कुक्षि में श्री ऋषभदेव स्वामी पधारें।

उनका जन्म सवा नौ महीने के बाद पेड़ के नीचे हुआ। माता ने देखें हुए 14 स्वप्न में से पहला स्वप्न ऋषभ का देखा था, इसलिए ऋषभदेव नाम दिया गया था। जब उनका जन्म हुआ तब जुगल काल चल रहा था। उनकी 20 लाख पूर्व की आयु में शक्रेन्द्र ने विनीता नगरी की रचना की और ऋषभदेव को राजा बनाया। ऋषभदेव स्वामी ने जुगलिया धर्म को दूरकर 1 असि, 2 मसि, 3 कृषि आदि 72 कलाओं की पुरुषों को शिक्षा दी। स्त्रियों को 64 कलाएँ सिखाई। अनुकंपा के निमित्त वश 20 लाख पूर्व वर्ष तक कुंवर बनकर रहे और 63 लाख पूर्व वर्ष राज्य को संभाला। तद् पश्चात उन्होंने अपने पुत्र भरत को राज्य सौंपकर 4000 पुरुषों के साथ दीक्षा ग्रहण की। 1000 वर्ष के बाद केवलज्ञान प्राप्त किया। ऋषभदेव के पुत्र भरत राजा को एक

साथ दो शुभ संदेश मिले 1. भगवान को केवलज्ञान प्राप्त हुआ और 2. भरत के शस्त्रागार में सुदर्शन चक्र (चक्र रत्न) उत्पन्न हुआ। उस चक्ररत्न के प्रभाव से राजा भरत इस अवसर्पिणीकाल के प्रथम चक्रवर्ती बने। उनके पिता श्री ऋषभदेव इस अवसर्पिणीकाल के पहले राजा, पहले केवली, पहले तीर्थंकर बने।

ऋषभदेव ने छद्मस्थ अवस्था और केवली अवस्था, दोनों को मिलाकर एक लाख पूर्व वर्ष संयम की पालना की। वह अष्टापद पर्वत पर छह दिनों के चौविहारा संथारा के साथ पद्मासन में बैठकर दस हजार साधुओं के साथ मोक्ष पधारें। इस तीर्थंकर के पाँचों कल्याणक, उत्तराषाढ़ा नक्षत्र में हुए। इस में 1. सर्वार्थसिद्ध विमान से च्यवन कर रानी मरुदेवी की कुक्षि में उत्पन्न हुए, 2. जन्म, 3. राज्याभिषेक, 4. दीक्षा अंगीकार, 5. केवलज्ञान प्राप्ति और अभिजीत नक्षत्र में मोक्ष पधारें। जुगलिया धर्म निवारण के बाद गति पांच होती है।

•चौथा आरा•

जब तीसरे आरे का अंत होता है और चौथा आरा शुरू होता है, तो वर्ण, गंध, रस, स्पर्श की मात्रायें अनंत अनंत हीन हो जाती हैं। चौथा आरा एक क्रोडाक्रोडी सागरोपम में 42,000 वर्ष कम। यह आरा दुषम सुषम नाम का, जिसका अर्थ है बहुत सारी विषमता और सुख कम। आरे के शुरूआत में अवगाहना पाँचसौ धनुष की, आरे के अंतिम समय में सात हाथ की होती है। आरे की शुरूआत में क्रोड पूर्व का आयुष्य, आरे के अंतिम समय में सो वर्ष से अधिक आयुष्य होता है। आरे के शुरूआत में 32 पसलियाँ और आरे के अंतिम समय में 16 पसलियाँ होती हैं। इस आरे में छह संघयण, छह संस्थान होते हैं। इस आरे में प्रतिदिन भोजन की इच्छा होती है, तब पुरुष 32 कवल का, स्त्री 28 कवल का और नपुंसक 24 कवल का आहार करते है। उस आरे में गति 5 जानिए, भूमि की गुणवत्ता को अच्छा और आरे के उतरते उतरते भूमि की गुणवत्ता कम होती जानिए।

इस चौथे आरे में, शेष 23 तीर्थंकर, 11 चक्रवर्ती, 9 बलदेव, 9 वासुदेव और 9 प्रतिवासुदेव इस तरह मिला के 63 श लासघनीय (श्रेष्ठ पुरुष) अवसर्पिणीकाल में जन्म लेते हैं।

जब इस आरे के 75 वर्ष और साढ़े आठ महीने शेष रह गए, तब 10वें प्राणत देवलोक में 20 सागरोपम का आयुष्य व्यतीत करके (च्यवन करके),माहण कुंड नगरी में, ऋषभदत्त ब्राह्मण के घर, देवानंदा ब्राह्मणी की कुक्षी में श्री महावीर स्वामी

का जीव आषाढ़ सुदी छठ् की मध्यरात्रि को जन्मा, वहा स्वामी 82 रात्रि रहे।

83 की रात्रि में शकेन्द्र का आसन चलित हुआ, तब शकेन्द्र ने अवधि ज्ञानका उपयोग लगा के देखा कि श्री महावीर स्वामी एक भिक्षुक कुल में जन्मे है, यह अनंत काल में हुआ आश्चर्य था।

तब शकेंद्र ने हरिणैगमैषी देव को बुलाकर कहां,"तुम जाओ, जाकर क्षत्रिय कुंड नगर में, राजा सिद्धार्थ के घर तथा रानी त्रिशला देवी के गर्भ में श्री महावीर स्वामी का गर्भ स्थापित करो।तब हरिणैगमैषी ने "तथैति"(जैसे कहा जा रहा है वैसे ही) कहा, और उसी क्षण, वह माहणकुंड पहुँचें, भगवान को प्रणाम किया, और कहा, "हे स्वामी!आपको अच्छी तरह से पता होगा कि मैं आपका गर्भ साहरण कर रहा हूँ।"उस समय देवानंदा ब्राह्मणी को अवस्वापिनी निंद्रा का प्रयोग करके उसके गर्भ का साहरण कर लिया, और उन्हें क्षत्रिय कुंड नगर में ले जाकर, राजा सिद्धार्थ के घर, रानी त्रिशला देवी के गर्भ में स्थापित कर दिया।

कुल मिलाकर सवा नौ महीने बाद चैत्र सुद की तेरहवीं को भगवान महावीर का जन्म हुआ।

इसके बाद वे दिन-प्रतिदिन बडे होते गए। क्रमशः जब वे यौवनावस्था को प्राप्त हुए तो यशोदा नामक स्त्री से विवाह हुआ। सांसारिक सुख भुगतते हुए एक पुत्री का जन्म हुआ, जिसका नाम प्रियदर्शना रखा गया। भगवान महावीर जब 28 वर्ष के थे, तब राजा सिद्धार्थ और रानी त्रिशला ने एक माह का संथारा लेकर आराधक श्रावक बनकर बारहवें देवलोक में जन्म लिया। इसके बाद बड़े भाई के आग्रहवश वैराग्यभाव से संसार में दो वर्ष रहे। फिर 30 वर्ष की आयु में, कार्तिक वदी दशमी को एकाकी रूप में संयम ग्रहण किया।

संयम लेकर साढ़े बारह वर्ष और 15 दिन तक संयम और तप की घोर साधना की। अंततः वैशाख सुदी दसमी के दिन, चौथी पोरसी में, जृंभिक ग्राम के बाहर, ऋजुवालिका नदी के उत्तर तट पर, सामानिक गाथापति के खेत में, गुप्त यक्ष के चैत्य के ईशान कोण में, शाल वृक्ष के नीचे, उकडू अर्थात् गोदूह आसन में बैठकर, धूप की आतापना लेते हुए चौविहार छट्ठ तप की आराधना करते हुए, श्री महावीर स्वामी ने शुक्ल ध्यान धरते हुए (1) मोहनीय, (2) ज्ञानावरणीय, (3) दर्शनावरणीय, (4) अंतराय- इन चार घाति कर्मों का क्षय करके केवलज्ञान एवं केवलदर्शन की प्राप्ति की। उन्हों ने उनतीस वर्ष और साढ़े पाँच महीने तक केवली

रूप में विचरण किया। उन्होंने कुल मिलाकर 72 वर्ष का आयुष्य भुगता।

जब चौथे आरे में तीन वर्ष और साढ़े आठ महीने शेष थे, उस समय आसो वदी अमावस्या (आगमिक भाषा में कार्तिक वदी अमावस्या) के दिन पावापुरी नगरी में भगवान महावीरने अकेले ही निर्वाण (मोक्ष) प्राप्त किया। भगवंत के पाँच कल्याणक उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में संपन्न हुए - (1) दसवें प्राणत देवलोक से च्यवन पाकर देवानंदा की कुक्षि में उत्पन्न हुए, (2) गर्भ का स्थानांतरण हुआ, (3) जन्म हुआ, (4) दीक्षा अंगीकार की, (5) केवलज्ञान प्राप्त किया और स्वाति नक्षत्र में भगवान ने मोक्ष प्राप्त किया।

श्री महावीर प्रभु निर्वाण को प्राप्त हुए, उसी समय श्री गौतमस्वामी को केवलज्ञान प्राप्त हुआ। श्री गौतमस्वामी 12 वर्ष केवली रूप रहकर मोक्ष पधारें। उनके बाद श्री सुधर्मा स्वामी को केवलज्ञान प्राप्त हुआ। श्री सुधर्मा स्वामी 8 वर्ष केवली रूप में रहकर मोक्ष पधारें। तत्पश्चात श्री जंबूस्वामी को केवलज्ञान प्राप्त हुआ। श्री जंबूस्वामी 44 वर्ष केवली रूप में रहकर मोक्ष पधारें। इस प्रकार, श्री महावीर प्रभु के मोक्ष जाने के पश्चात कुल 64 वर्षों तक केवलज्ञान रहा। उसके बाद केवलज्ञान का विच्छेद (नाश) हो गया।

चौथे आरे में जन्मे व्यक्ति पाँचवे आरे में मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं, किंतु जो पाँचवे आरे में जन्मे हैं वे उसी आरे में मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकते। जंबूस्वामीजी के मोक्ष प्राप्त करने के बाद दस बोल (उपलब्धियाँ) नष्ट हो गए -
(1) केवलज्ञान, (2) मन:पर्यवज्ञान, (3) परम अवधिज्ञान, (4) यथाख्यात चारित्र, (5) सूक्ष्म संपराय चारित्र, (6) परिहारविशुद्ध चारित्र, (7) पुलाक लब्धि, (8) क्षपक श्रेणी, उपशम श्रेणी, (9) आहारक शरीर, (10) जिनकल्पी परंपरा।

•पाँचवां आरा•

चौथे आरे के समाप्त होते पाँचवां आरा प्रारंभ होता है। इस आरे में वर्ण, गंध, रस, और स्पर्श के पर्यव अनंत-अनंत हीन होते हैं। पाँचवां आरा 21,000 वर्षों का होता है। यह आरा "दुषम" नाम से जाना जाता है अर्थात् केवल और केवल दुख की अनुभूति वाला काल। इस आरे की शुरूआत में सात हाथ की अवगाहना होती है और उतरते समय दो हाथ की अवगाहना होती है। आरे की शुरूआत में 100 वर्षों से अधिक आयु होती है, आरे के अंत समय में 20 वर्ष की होती है। आरे की शुरूआत में शरीर में 16 पसलियाँ होती हैं, और आरे के अंत समय में 8 पसलियाँ।

इस आरे में छह संघयण और छह संस्थान होते हैं। आरे के अंत में अंतिम (सेवार्त) संघयन और हूंड संस्थान होता हैं। इस आरे में व्यक्ति दिन-प्रतिदिन आहार की इच्छा करता है और अपने शरीर के अनुसार आहार करता है। भूमि की सरसाई थोड़ी - अर्थात् कुछ हद तक अच्छी - होती है, जबकि आरे के अंत समय में यह कुम्हार की निंभार (मिट्टी की राख) जैसी होती है। गति चार होती है। मोक्षगति बंध हो जाती है।

पाँचवें आरे के लक्षणों के 32 बोल इस प्रकार हैं -

1. बड़े नगर गाँव के समान हो जाएँगे।
2. गाँव श्मशान के समान हो जाएँगे।
3. उच्च कुल के पुत्र दास-दासी जैसे याने नीच कुल के हो जाएँगे।
4. प्रधान लालची हो जाएँगे।
5. राजा यमदंड जैसे अत्याचारी बनेंगे।
6. अच्छे कुल की स्त्रियाँ लज्जारहित हो जाएँगी।
7. अच्छे कुल की स्त्रियाँ वेश्या के समान आचरण करेंगी।
8. पुत्र अपनी इच्छा और मर्जी से स्वतंत्र चलेंगे।
9. शिष्य गुरु के अवर्णवाद (निंदा) करेंगे।
10. दुष्ट लोग सुखी होंगे।
11. सज्जन लोग दुखी होंगे।
12. दुर्भिक्ष (वर्षा होगी, थोड़े अन्न की उपज भी होगी परंतु उस क्षेत्र में अनार्य इत्यादि होने के कारण भिक्षा प्राप्ति दुर्लभ होगी) और दुष्काल (वर्षा न हो, अन्न उपजे नहीं ऐसा समय) अधिक होंगे।
13. चूहे, साँप आदि की दाढ़ (काटने की प्रवृत्ति) अधिक होगी - अर्थात् वातावरण में विष और जहरीले तत्वों की तीव्रता अधिक होने से उनके जहरमें तीव्रता बढेगीं।
14. ब्राह्मण धन के लोभी होंगे।
15. हिंसा को धर्म बतानेवाले अधिक होंगे।
16. एक ही धर्म में अनेक भेद हो जाएँगे।
17. मिथ्यात्वी (मिथ्या मतावलंबी) देव अधिक होंगे।
18. मिथ्यात्वी लोग अधिक हो जाएँगे।
19. मनुष्यों के लिए देवदर्शन दुर्लभ हो जाएगे।

20. वैताढ्य पर्वत की श्रृंखला में रहने वाले विद्याधरों का विद्याप्रभाव कम हो जाएगा।
21. दूध, दहीं, घी आदि में पौष्टिकता और सारता कम हो जाएगी।
22. बैल आदी पशु का बल और आयु कम हो जाएगें।
23. साधु-साध्वियों के लिए मास-कल्प एवं चातुर्मास करने योग्य क्षेत्र कम रहेंगे।
24. श्रावकों की ग्यारहवीं प्रतिमा और साधुओं की बारहवीं प्रतिमा का विच्छेद हो जाएगा।
25. गुरु शिष्यों को शिक्षित नहीं करेंगे।
26. शिष्य अविनीत और कलहप्रिय होंगे।
27. अधर्मी, कलहकारी, झगड़ालू, कुमनुष्य अधिक होंगे और सुमनुष्य (सज्जन) बहुत कम रह जाएंगे।
28. आचार्य अपने-अपने गच्छ की परंपरा व समाचारी का अलग-अलग प्रवर्तन करेंगे और मूढ़, मूर्ख मनुष्यों को मोह और मिथ्यात्व के जाल में डालेंगे। वे उत्सूत्र (शास्त्रों से विपरीत) बोलेगें। निंदक और कुबुद्धिवाले अधिक होंगे और अपनी परंपरा में ही उलझे रहेंगे।
29. सरल, भद्र, न्यायी और प्रामाणिक पुरुष बहुत थोड़े रह जाएँगे।
30. म्लेच्छों (अनार्य) के राज्य अधिक होंगे।
31. हिन्दुओं के राज्य अल्प समृद्धिवाले और बहुत कम रह जाएँगे।
32. उच्च कुल के राजा भी नीच कार्य करेंगे और अन्याय, अधर्म तथा कुव्यसन में लिप्त रहेंगे।

इस आरे के अंत में सर्व धन का विच्छेद हो जाएगा। लोहे की धातु शेष रहेगी। चमड़े की मुद्राएँ (सिक्के) होगी, उन्हें धनी कहा जाएगा। इस आरे में एक उपवास करना, मासक्षमण के समान कठिन प्रतीत होगा।

इस आरे के अंतिम चरण में समस्त ज्ञान का विच्छेद हो जाएगा। केवल 'श्री दशवैकालिक सूत्र' के पहले चार अध्ययन शेष रहेंगे। इन्हीं के आधार पर चार जीव संथारा लेकर एकावतारी बनेंगे। उन चार जीवों के नाम इस प्रकार हैं:
(1) दुपसह नामक आचार्य, (2) फाल्गुनी नामक साध्वी, (3) जिनदास नामक श्रावक (4) नागश्री नामक श्राविका।

आषाढ़ सुदी पूर्णिमा (15) के दिन शक्रेन्द्र का आसन चलायमान होगा।

तब शक्रेन्द्र उपयोग से देखेंगे कि आज पाँचवा आरा समाप्त हो रहा है और कल छट्ठा आरा आरंभ होगा। तब वह आकर उन चार जीवों से कहेंगे -

"कल छट्ठा आरा आरंभ होगा। इसलिए आप आलोचना, प्रतिक्रमण और स्व दोषों की निंदा कर निःशल्य बनो।" तब वे चारों जीव वैसा ही करेंगे - सब से क्षमा माँगकर 'निःशल्य' (निर्दोष) होकर संथारा लेंगे। उसी समय संवर्तक और महासंवर्तक नामक वायु उत्पन्न होगा।

उस काल में दिशाएँ निरंतर धूल से भरी होंगी। रजकण और धूल से भरी दिशा के कारण आगे कुछ भी दिखाई नहीं देगा। अंधकार के कारण चारों ओर प्रकाशहीनता छा जाएगी। समय की रूक्षता के कारण चंद्रमा से असह्य ठंड और सूर्य से अत्याधिक तपन महसूस होगी।

फिर दस प्रकार के मेघ बरसेंगे -

1. अरस मेघ - जिस में रस न हो। 2. विरस मेघ- जिस में विपरीत या विकृत रस हो। 3. क्षार मेघ - क्षार समान पानी युक्त मेघ। 4. खट्टा मेघ - खट्टे स्वादवाला जल। 5. अग्नि मेघ - अग्नि वर्षा करने वाला मेघ। 6. विद्युत मेघ - बिजली के प्रभाव से युक्त। 7. विष मेघ - विषैले जल की वर्षा करने वाला। 8. व्याधि मेघ - विविध प्रकार के रोग से वेदना उत्पन्न कराता हुआ मेघ। 9. जल मेघ - दूषित जल से भरा हुआ मेघ। 10. अप्रिय मेघ - निरंतर, तीव्र और असह्य गति से वर्षा करने वाला मेघ।

ऐसी वर्षा से पहाड़, पर्वत, दुर्ग, टापू, कुएँ, सरोवर आदि सभी स्थानक नष्ट हो जाएँगे। केवल ये पाँच स्थानक शेष रहेंगे - (1) वैताढ्य पर्वत, (2) गंगा नदी, (3) सिंधु नदी, (4) ऋषभकूट (यह एक पर्वत है जिसकी चोटी शिखर के स्वरूप की तरह होने से ऋषभकूट कहा गया है), (5) लवण की खाड़ी। इन पाँच के अलावा अन्य सभी स्थानक नष्ट हो जाएँगे।

ये चार जीव समाधि परिणाम से काल को प्राप्त कर पहले देवलोक जाएँगे। उस समय चार बोल विच्छेद हो जाएगें -

(1) प्रथम प्रहर में जैन धर्म का विच्छेद हो जाएगा। (2) द्वितीय प्रहर में मिथ्यात्वी (मिथ्या मतावलंबियों) का धर्म भी समाप्त हो जाएगा। (3)तृतीय प्रहर में राजनीति (राजसत्ता और शासन की व्यवस्था) का नाश हो जाएगा। (4) चतुर्थ प्रहर में बादर अग्नि का भी अंत हो जाएगा।

•छठा आरा•

जब पाँचवा आरा समाप्त होकर छट्ठा आरा आरंभ होगा, तब वर्ण, गंध, रस और स्पर्श के पर्याय अनंत-अनंत हीन हो जाएँगे। यह आरा 21,000 वर्षों का होगा। यह आरा "दुषम-दुषम" कहा जाता है अर्थात् यह आरा अत्यंत भयानक और बेहद दुःखदायी होगा। बैठते आरे में केवल दो हाथ की अवगाहना होगी, और उतरते आरे में मात्र एक हाथ की। आरे के प्रारंभ में आयुष्य 20 वर्ष का होगा और आरे के अंत समय में 16 वर्ष का। आरे के प्रारंभ में शरीर में 8 पसलियाँ होंगी और आरे के अंत समय में 4 पसलियाँ। छेवटुं (सेवार्त) संघयण और हूंड संस्थान - उतरते आरे तक रहेगें, आरे के अंत समय में भी यही जानना। धरती की सरसाई राख के समान रहेगीं। छः वर्ष की आयु में स्त्री गर्भ धारण करेगी। ऐसे समय में जन्म लेने वाले बच्चे काले, कुरूप, रोगग्रस्त, क्रोधी और नाखून तथा अत्याधिक बाल युक्त होंगे। वह कुत्तियाँ के समान परिवार सहित इधर-उधर घूमेंगी। इस आरे में गंगा और सिंधु नदियों के किनारे, वैताढ्य पर्वत के मूल में 72 बिल (गुफाएँ) होंगे, जिनमें मनुष्य, तिर्यंच और पक्षि बीज मात्र (अंश रूप में कुछ) जीवित रहेंगे। इन नदियों का पट 62।। योजन लंबा है। पर उस समय उनकी चौड़ाई रथ के चक्को के अंतर जितनी और गहराई गाड़ी की धुरी डूबे उतनी होगी। इन नदियों में बहुत सी मछलियाँ और कछुए होंगे। 72 बिलों में रहने वाले मनुष्य सुबह और शाम को मछलियाँ और कछुए निकालकर रेत में सेंकेंगे। सूर्य अत्यधिक तपेगा और ठंड भी असहनीय होगी। इसलिए वे जीव पक जायेंगे। मनुष्य उनका आहार करेंगे। उन जीवो की हड्डियाँ और चमड़ी तिर्यंच चाट के रहेंगे। मनुष्यों की खोपड़ी में पानी भरकर उसे वे पीएँगे। इस काल में गति प्रायः नरक और तिर्यंच ही रहेगी। इसी प्रकार 21000 वर्ष पूर्ण होंगे। जो व्यक्ति दान-धर्म रहित, नमस्कार मंत्र रहित, प्रत्याख्यान रहित और सम्यक्त्व से रहित होगा, वह छट्ठे आरे में उत्पन्न होगा। इसलिए यह जानकर जो भी मनुष्य जैन धर्म का पालन करेगा या उसमें श्रद्धा रखेगा, वह जीव इस भवसागर से तरकर सुख को प्राप्त करेगा।

अवसर्पिणी काल के छह आरे का वर्णन समाप्त होता है।

•उत्सर्पिणी काल के छह आरा का वर्णन•

उत्सर्पिणी काल वह समय है जिसमें जीवों के संघयण, संस्थान, आयुष्य, अवगाहना, उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषार्थ और पराक्रम क्रमशः बढ़ते जाते हैं। इसी प्रकार पुद्गल (पदार्थ) के वर्ण, गंध, रस और स्पर्श भी उत्तरोत्तर उत्कृष्ट होते जाते हैं। साथ ही शुभ भावनाएँ भी बढ़ती हैं।

•पहला आरा•

उत्सर्पिणी काल का पहला आरा, अवसर्पिणी काल के छट्ठे आरे के समान होता है। यह आरा 21,000 वर्ष का होता है। इसका नाम दुषम-दुषम होता है। यह आरा अत्यंत भयानक और कष्टदायक होता है। इसमें अन्य सभी भाव (विवरण) आगे बताये हुए छट्ठे आरे के समान ही होते हैं।

•दूसरा आरा•

उत्सर्पिणी काल का दूसरा आरा, अवसर्पिणी काल के पाँचवे आरे जैसा होता है। यह भी 21,000 वर्ष का होता है और दुषम नाम से जाना जाता है। छठ्ठा आरा 21,000 वर्ष और उत्सर्पिणी का पहला आरा 21,000 वर्ष में जो रूक्षता और अशुभताएँ आई थीं, उन्हें दूर करने हेतु दूसरे आरे के प्रारंभ में सात-सात दिन की पाँच प्रकार की वर्षा होंगी - कुल 35 दिन तक वर्षा होगी।

पहले सात दिन पुष्करावर्त मेघ बरसेगा, जिसके कारण धरती की उष्णता दूर होगी, धरती ठंडी पडेगीं। दूसरे सात दिन क्षीर मेघ अर्थात् दूध समान जल बरसेगा, जिससे धरती की रूक्षता खत्म होगी। शुभ वर्ण, गंध, रस, स्पर्श उत्पन्न होंगे। तीसरे सात दिन घृत मेघ अर्थात् घी जैसा जल बरसेगा जिससे धरती स्निग्ध होगी, उसमें चीकनाहट आयेंगी। चौथे सात दिन तक अमृत मेघ अर्थात् अमृत जैसा सफेद जल बरसेगा, जिससे बीजारोपण होगां और बीज अंकुरण योग्य बनेंगे। पांचवा और अंतिम सात दिनों में रस मेघ अर्थात् जिससे अंकुरित वनस्पतियों में रस उत्पन्न करे ऐसा पानी बरसेगा और पत्तियाँ, पुष्प और फल उत्पन्न होंगे।

इन पाँच प्रकार की वर्षाओं से धरती में पाँच गुण उत्पन्न होते है और धरती सुंदर बनेगी। बिलों में रहने वाले मनुष्य बाहर निकलेंगे और पुष्प, फल आदि से शोभित वनस्पतियों को देखकर मांसाहार न करने का नियम बनाएँगे।

इस आरे में कोई भी धर्म नहीं होगा, न ही साधु-साध्वियाँ होंगे। लोग असि

(हथियार), मसि (लिखने की विद्या) आदि स्वयं सीखेंगे। चारों गतियों में जीव जा सकेंगे। अन्य विवरण अवसर्पिणीकाल के पाँचवें आरे के समान ही जानना।

•तीसरा आरा•

उत्सर्पिणी काल का तीसरा आरा, अवसर्पिणी काल के चौथे आरे जैसा होता है। यह आरा एक क्रोडक्रोड़ी सागर में 42,000 वर्ष कम होता है। इसका नाम दुषम-सुषम होता है। इस आरे में 3 वर्ष और साढ़े आठ महीने बीतने के बाद, प्रथम नरक से निकलकर श्रेणिक महाराज का जीव प्रथम तीर्थंकर महापद्म स्वामी के रूप में जन्म लेगा। उनका आयुष्य 72 वर्ष (भगवान महावीर के समान) होगा। इसके बाद 22 तीर्थंकर, 11 चक्रवर्ती, 9 बलदेव, 9 वासुदेव और 9 प्रतिवासुदेव भी इसी आरे में होंगे।

•चौथा आरा•

यह आरा अवसर्पिणी काल के तीसरे आरे जैसा होता है। यह आरा दो क्रोडक्रोड़ी सागरोपम का होता है। इसमें 3 वर्ष और साढ़े आठ महीने बीतने के बाद 24वें तीर्थंकर का जन्म होगा उनका आयुष्य 84 लाख पूर्व वर्ष (भगवान ऋषभदेव के समान) होगा। 24वें तीर्थंकर शिल्पकला आदि की शिक्षा नहीं देंगे क्योंकि वह शिक्षा पूर्व से चली आ रही होगी। इसी आरे में 12वें चक्रवर्ती भी होंगे। 24वें तीर्थंकर के मोक्ष जाने के बाद बादर अग्नि, राजधर्म और चारित्र धर्म का विच्छेद हो जाएगा। इसके पश्चात एक क्रोड पूर्व वर्ष जितना संधिकाल पसार हो जाने के बाद पूरी तरह से अकर्म भूमि जैसा व्यवहार (जुगलिया काल) हो जाएगा।

•पाँचवां और छट्ठा आरा•

उत्सर्पिणी काल का पाँचवां और छट्ठा आरा, अवसर्पिणी के दूसरे और पहले आरे के समान होता है। इसका संपूर्ण विवरण जुगलिया भूमि जैसा जानना।

कालचक्र की व्यापकता:

यह कालचक्र केवल पाँच भरत और पाँच इरवत - इन दस मनुष्य क्षेत्रों में ही होता है। अकर्मभूमि के देवकुरु और उत्तरकुरु, इन दो क्षेत्र में अवसर्पिणी काल के पहले आरे की शुरुआत जैसे भाव हंमेशा रहते हैं। हरिवास और रम्यवास में दूसरे आरे की शुरूआत जैसे भाव सदा विद्यमान रहते हैं। हेमवय्र और हिरण्यवय क्षेत्रों में

अवसर्पिणी काल के 6 आरो का कोस्टक

क्रम	क्रम विवरण	पहला आरा	दूसरा आरा	तीसरा आरा	चौथा आरा	पाँचवाँ आरा	छट्ठा आरा
1	आरे का नाम	सुषम सुषम	सुषम	सुषम दुषम	दुषम सुषम	दुषम	दुषम दुषम
2	काल मान	4 क्रो.क्रो. सागर	3 क्रो.क्रो. सागर	2 क्रो.क्रो. सागर	1 क्रो.क्रो. सागर में 42,000 वर्ष कम	21,000 वर्ष	21,000 वर्ष
3	शुरूआत में देहमान	3 गाउ	2 गाउ	1 गाउ	500 धनुष	7 हाथ	2 हाथ
4	अंतिम भाग में देहमान	2 गाउ	1 गाउ	500 धनुष	7 हाथ	2 हाथ	1 हाथ
5	शुरूआत में आयुष्य	3 पल्य	2 पल्य	1 पल्य	1 क्रोड पूर्व का	100 वर्ष अधिक	20 वर्ष
6	अंतिम भाग में आयुष्य	2 पल्य	1 पल्य	1 क्रोड पूर्व	100 वर्ष अधिक	20 वर्ष	16 वर्ष
7	शुरूआत में पसलियां	256	128	64	32	16	8
8	अंतिम भाग में पसलियां	128	64	32	16	8	4
9	संघयण	वज्रऋषभनाराच	वज्रऋषभनाराच	वज्रऋषभनाराच/6	6	6	सेवार्त
10	संठान	समचतुरंस्त्र	समचतुरंस्त्र	समचतुरंस्त्र/6	6	6	हूंड
11	आहार इच्छा	3 दिन	2 दिन में	1 दिन में	हर रोज	हर रोज	हर रोज
12	आयुष्य का बंध कब	छह महिने पहले	छह महिने पहले	छह महिने पहले	कभी भी	कभी भी	कभी भी
13	छोरुं की प्रतिपालना	49 दिन	64 दिन	79 दिन	---	---	---
14	गति कौन कौन सी	देव	देव	देव /पांच	पांच	5/4	2
15	धरती की सरसाई	शक्कर	चीनी जैसी	गुड जैसी	अच्छी	कम अच्छी	कुंभार की निंभाडे
	अंतिम भाग में	चीनी	गुड जैसी	अच्छी	कम अच्छी	निंभाडे की राख जैसी	की राख जैसी

तीसरे आरे की शुरूआत जैसे भाव सदा रहते हैं। 56 अंतरद्वीपों में तीसरे आरे के अंतिम समय जैसे भाव सदा रहते हैं (जुगलकाल जैसे, कर्मभूमि जैसे नहीं)। महाविदेह क्षेत्र में चौथे आरे जैसे भाव सदा रहते हैं - अतः इन सभी क्षेत्रों में छह आरे या कालचक्र होते ही नहीं।

•धर्मकाल की गणना•

अवसर्पिणी काल में धर्मकाल एक क्रोडाक्रोड़ी सागर में 21000 वर्ष कम + 1 लाख पूर्व 3 वर्ष और साढ़े आठ महीने।

उत्सर्पिणी काल में धर्मकाल एक क्रोडाक्रोड सागर में 42,000 वर्ष कम + 84 लाख पूर्व 3 वर्ष और साढ़े आठ महीने।

अतः संपूर्ण एक कालचक्र में धर्मकाल सिर्फ दो क्रोडाक्रोड़ी सागर + 85 लाख पूर्व में कुल 62,992 वर्ष और 7 महीने कम होता है। (21000+42000-7 वर्ष और पांच महिने)

॥ इस प्रकार उत्सर्पिणी काल के छह आरों का वर्णन ॥

इति छह आरा के भाव समाप्त

(सिर्फ समझ के लिए, परीक्षा में नहीं पूछा जाएगा)

युगलिया और कल्पवृक्ष का वर्णन : युगलिया की विशेष जानकारी

युगलिक क्षेत्र में इस प्रकार से होता हैं: 1. उनका शरीर आकर्षक, बलवान तथा स्वर मधुर होता है। 2. वे शांत प्रकृति, मंद कषाय वाले, सरल, नम्र, विनयी और भद्रिक होते हैं। 3. उनके क्षेत्र में कल्पवृक्षों के फलों का आहार होता है, जो चक्रवर्ती के भोजन से भी अधिक मधुर होते हैं। 4. वहाँ सोना, चाँदी, हीरा, माणिक्य, रत्न आदि होते हैं। 5. माता-पिता, भाई-बहन, मित्र, संबंधी आदि होते हैं। 6. गाय, भैंस, बैल आदि स्थलचर और खेचर प्राणी भी युगलिक होते हैं। 7. युगलिक एक स्थान से दूसरे स्थान पैदल जाते हैं। 8. सिंह, बाघ आदि हिंसक जानवर भी होते हैं। 9. गेहूँ, बाजरा आदि अनाज स्वतः उत्पन्न होते हैं। 10. उस क्षेत्र में वर्षा होती है।

युगलिक क्षेत्र में ये नहीं होता: 1. शरीर कभी वृद्ध नहीं होता, उसमें मैल या

पसीना नहीं आता। 2. असि (हथियार), मसि (लिपि), कृषि या अन्य व्यापार नहीं होते। 3. गाँव, नगर, घर, दुकान जैसी कोई संरचना नहीं होती। 4. राजा-प्रजा, पदवी, सम्मान, ऊँच-नीच, सेवक आदि की कोई व्यवस्था नहीं होती। 5. भोजन पकाना, धोना, नृत्य, मकान निर्माण जैसी 72 कलाएँ नहीं होतीं। 6. सोना-चाँदी आदि का उपयोग नहीं होता। 7. संबंधियों के प्रति तीव्र राग या आसक्ति नहीं होती। 8. विधिपूर्वक विवाह, नैवेद्य, पूजा या कुलदेवी की परंपरा नहीं होती। 9. कोई त्योहार, उत्सव, लौकिक या धार्मिक अभ्यास नहीं होते। 10. प्राणियों का उपयोग न वाहन के रूप में होता है, न दूध हेतु। 11. वाहन नहीं होते। 12. हिंसक पशु किसी को कष्ट नहीं पहुँचाते, न मांसाहार करते हैं। 13. मच्छर, जूँ, टिड्डी, मक्खी जैसे जीव का उपद्रव नहीं होता। 14. गेहूँ-बाजरा जैसे अनाज का उपयोग भोजन हेतु नहीं होता। 15. बादर अग्नि, चूल्हा, भट्टी, सिगड़ी आदि युगलिक क्षेत्र में नहीं होते।

दस प्रकार के कल्पवृक्ष (सिर्फ समझ के लिए, परीक्षा में नहीं पूछा जाएगा):

दस कल्पवृक्ष जो सामान्य वृक्ष जैसे होते हैं, वे बादर वनस्पतिकाय होते हैं और सचेत होते हैं। ये कल्पवृक्ष पाँच भरत, पाँच इरवत क्षेत्र में अवसर्पिणीकाल के पहले तीन आरों में और उत्सर्पिणीकाल के अंतिम तीन आरों में होते है । हेमवय, हिरण्यवय, हरिवास, रम्यक्वास, देवकुरु, उत्तरकुरु तथा 56 अंतर्द्वीपों में सदा विद्यमान रहते हैं। इनके रस और गुण आरे व क्षेत्र के अनुसार घटते-बढ़ते हैं, परंतु ये सामान्य फलों से अनगिनत गुना श्रेष्ठ, स्वादिष्ट और रसवाले होते हैं।

1.मतंगा - इस वृक्ष के अंग(अवयव) मधुर रसयुक्त होते हैं, जिनसे शरीर पुष्ट होता है।

2. भिंगा - इस वृक्ष के फल, फूल, पत्ते आदि अलग-अलग बर्तन जैसे आकार के होते हैं और रत्नजडित होते हैं।

3. तुडीयंगा- इस वृक्ष के अंग 49 प्रकार के सुर सुनाते हैं। हवा के स्पर्श से पत्तियाँ-फल टकराते हैं और सुंदर स्वर निकलते हैं।

4. दीपशिखांग - इस वृक्ष के अंग रत्नजडित दिपक जैसे होते हैं, जो दिपक जैसा प्रकाश देते है।

5. ज्योतिशिखांग -इस वृक्ष के अंग सूर्य या अग्नि के समान ताप देने वाले होते हैं, पर इनके ताप से आँखों में जलन नहीं होती।

6. चितंगा - इस वृक्ष के अंग फूलों की मालाओं जैसे होते हैं और इन की पत्तियाँ,

फुल आदि पर सुंदर चित्र होते हैं।
7. चित्तरसा - यह वृक्ष मनपसंद स्वादयुक्त आहार देते है, इनके फल, फुल, पत्ते स्वादिष्ट होते है। वे भोजन के काम में आते है। जिसे पकाना नहीं पड़ता।
8. मणियंगा - इस वृक्ष के अंग आभूषणों के देने वाले होते है। सोना, चांदी, मणिरत्न के विविध प्रकार के आभूषण जैसे होते हैं, जिन्हें पहना जा सकता है।
9. गेहागारा - यह वृक्ष अलग अलग आकार के घर-मकान के रूप में होते हैं, जो हवेली/ बंगले, महलों से भी सुंदर आकृति वाले होते है। आकर्षक एवं अंदर सुंदर चित्र वगेरे भी होते है।
10. अनिगणा - अनग्न नाम के वृक्ष। इस वृक्ष के अंग वस्त्र देने वाले होते है। इसके फल, फूल, पत्ते रंग-बिरंगे, हल्के, सुगंधित एवं डीझाईन वाले वस्त्रों जैसे होते हैं।

3. पूज्य साधु-साध्वीजी को गौचरी (आहार) वहोराने की समझ:

पंचमहाव्रत को धारण करने वाले साधु-साध्वीजी की आहार-पानी लेने की विधि को गौचरी कहते है। तिर्थंकर की आज्ञा अनुसार गौचरी वहोराने से पहले, देते समय और बाद में भी किसी भी जीव की हिंसा न हो-इसका ध्यान रखना चाहिए। साथ ही निर्दोष आहार-पानी वहोराने की भावना वालों को निम्न बातों का ध्यान रखना आवश्यक है:

पू. साधु-साध्वीजी पधारें उससे पहले इतना ध्यान रखें:

1.पूज्य साधु-संतों के नियमित दर्शन के लिए जाए और अपने घर की माहिती दे एवं अन्य श्रावकों के घर भी बताएँ। अथवा गोचरी के घर बताने वाले को अपने घर की माहिती दे।
2.गौचरी के समय घर का दरवाज़ा खुला रखें। उस समय कोई छह काय जीवों के हिंसात्मक कार्य न करें। आंगन या रूम धोना नहीं वगेरे...
3.भोजन करने से पहले पू. संतों को वहोराने की भावना करें।
4.पू. संतो को वहोराने की सही समझ रखें। खूद सूझते हो तो अवश्य वहोराने का लाभ लें । सचेत और अचेत वस्तुएँ अलग रखें। सूझती, निर्दोष चीजें कहा रखी है उसका ध्यान रखें।
5.कच्चे पानी के छींटे, हरी वनस्पति, सब्ज़ियों का कचरा, फलों के बीज या छिलके आदि घर में बिखरे न हों। चलते समय सचेत वस्तु बाधा न डाले - इसका ध्यान रखें।

6. संतों को देखकर गैस, पंखा, टी.वी., या बिजली के उपकरण बंद न करें।

जब पूज्य साधु-साध्वी घर पधारें तब इतना ध्यान रखें:

सचेत-अचेत का भेद:

वह पदार्थ जिसमें एकेंद्रिय से लेकर पंचेंद्रिय तक किसी भी प्रकार का जीव हो, उसे सचेत कहते हैं।

वह पदार्थ जिसमें कोई भी जीव न हो, जो अग्नि या शस्त्र से निर्जिव हो गया हो या स्वभाव से ही निर्जिव हो, वह अचेत कहलाता है। ऐसे अचेत पदार्थ साधुसंतोको

वहोराने योग्य होने से उनको सूझते पदार्थ कहते हैं।

अचेत पदार्थों को स्पर्श करनेवाला व्यक्ति सूझता कहलाता है। सचेत पदार्थ को स्पर्श करनेवाला व्यक्ति असूझता कहलाता है। सचेत वस्तु के स्पर्श से असुझता होता हैं। सचेत पदार्थ साधु-संतों को वहोराने योग्य न होने के कारण उसे असूझता पदार्थ कहते है।

वहोराते समय विशेष नियम: 1) जब पूज्य साधु-साध्वीजी घर पधारें, तो "पधारो-पधारो" कहकर विनम्रता से 7- 8 कदम तक आगे बढ़कर स्वागत करें। गौचरी देकर लौटते समय भी उन्हें 7-8 कदम तक विदा देने जाएँ। आवश्यकता हो तो गौचरी के अन्य घर भी दिखाएँ। 2) पूज्य साधु-साध्वीजी जब पधारें, तब असूझते आहार-पानी या व्यक्ति को न छुएँ। 3) असूझती वस्तु ग्रहण करने वाले व्यक्ति ने न तो गौचरी हेतु निमंत्रण देना चाहिए और न ही सूझते आहार-पानी को स्पर्श करना चाहिए। सूझते आहार देनेवाले को भी न छुएँ और उससे दूर रहें। 4) यदि कोई बात समझ में न आए तो संतो से पूछकर ही वस्तु लेनी/रखनी चाहिए, लेकिन उतावला व्यवहार न करें। 5) यदि गौचरी के समय भोजन तैयार न हो या घर के बड़े उपस्थित न हों, तो भी सुपात्रदान का लाभ नहीं छोड़ना चाहिए। घी, गुड़, शक्कर आदि वहोराकर सुपात्रदान का लाभ लें। 6) पू. साधु-साध्वीजीको आधाकर्मी याने की उनके निमित्त से छकाय जीवो की हिंसा करके आहार - पानी बनाया हो तो, वह वहोराना नहीं। साधु निमित्त ज्यादा आहार न बनाए, श्रावक को अपने लिए बनाए गए आहारमें से ही साधु को वहोराना चाहिए। 7) क्रीतकृत अर्थात् साधु के निमित्त कोई वस्तु खरीदी गई हो तो वह नहीं वहोरानी चाहिए। श्रावक ने अपने लिए या परिवार हेतु वस्तु खरीदी हो वही वहोरानी चाहिए। 8) साधु के आने की संभावना

जानकर, विशेष रूप से ज्यादा या जल्दीसे आहार बनाकर देना अनुचित है। 9) श्रावक स्वयं रात्रिभोजन का त्यागी होना चाहिए और सूर्यास्त से पूर्व भोजन पकाना चाहिए। 10) यदि सचेत वस्तु पर अचेत वस्तु रखी हो ऐसी संघट्टा वाली, या अचेत पर सचेत, या दोनों मिश्रित हों, या पुरी अचेत न हुई हो ऐसी वस्तु नहीं वहोरानी चाहिए। 11) गीले आंगन में खड़े होकर गौचरी नहीं वहोरानी चाहिए। 12) वह वस्तु जो गाय, कुत्ते आदि तिर्यंच के लिए रखी हुई हो। देव-देवी, नैवेद्य, बलि की वस्तुएँ हो, या दान, श्राद्ध, बावा-साधु आदि के लिए रखी गई हो - वह नहीं वहोरानी चाहिए। 13) वहोराते समय या बाद में सचेत पानी से हाथ धोना नहीं चाहिए। हाथ कपड़े से पोंछ लें। जिस चमच या बर्तन से वहोराया हो, उसे न धोएँ बल्कि अन्य कार्यों में उपयोग करें। वहोराने के बाद आहार कम पड़ जाए तो नया आहार न बनाकर घर में जो भी अल्पाहार हो, उसी से काम चलाएँ। 14) यदि कोई वस्तु शिशु या गर्भवती के लिए विशेष रूप से बनाई गई हो तो उसके उपयोग से पहले साधु को न वहोराए। वह उपयोग कर ले, उसके बाद बचा हो तो वहोरा सकते है। 15) यदि गर्भ का सातवां महीना शुरू हो गया हो, तो गर्भवती स्त्री को शरीर को कष्ट पहुँचाकर गौचरी नहीं देनी चाहिए। यदि माँ बालक को दूध पिला रही हो, तो उसे छोड़कर गौचरी देना अनुचित है। अपंग व्यक्ति को भी यदि परिश्रम करना पड़े, तो गौचरी न वहोराए। 16) वह वस्तु जो बहुत ऊपर रखी हो, और जिसे उतारने में कष्ट हो - ऐसी वस्तुएँ नहीं वहोरानी चाहिए। 17) अलमारी के खाने में यदि किसी कागज़ पर सचेत वस्तु पड़ी हो और पास में सूझती वस्तु रखी हो, तो वह असूझती मानी जाएगी। इसलिए अचेत वस्तुएँ अलग रखनी चाहिए। 18) जब पूज्य साधु-साध्वीजी पधारें, उस समय कच्चा नमक, पानी, अग्नि, वनस्पति आदि सचेत वस्तुओं के संपर्क से व्यक्ति असूझता हो सकता है - ऐसी स्थिति में गौचरी नहीं वहोरानी चाहिए।

गौचरी का निष्कलंक आयोजन- धर्म की साधना: इस प्रकार अतिथि संविभाग नामक श्रावक के बारहवे व्रत की आराधना पूज्य साधु-साध्वीजी को 14 प्रकार के निर्दोष दान देकर होती है।

आहारके दोषमें से वहोरानेवाले गृही दोषयुक्त आहार दे तो दोष लगता है, अतः सावधानी से निर्दोष गौचरी वहोरानी चाहिए। निर्दोष आहार पानी आदि देनेवाले को संयमी की अनुमोदना तथा कर्म निर्जरा का विशेष लाभ प्राप्त होता है।

1. भगवान ऋषभदेव

(तीर्थंकर चरित्र एवं जैन धर्म का मौलिक इतिहास)

तृतीय आरे के 84 लाख पूर्व 3 वर्ष और साढ़े आठ महीने शेष थे, तब आषाढ़ वदी चतुर्दशी के दिन, उत्तराषाढ़ा नक्षत्र में, सर्वार्थसिद्ध महाविमान से 33 सागर की आयु पूर्ण करके भगवान ऋषभदेव का जीव कुलकर नाभिराय की पत्नी मरुदेवी के गर्भ में अवतरित हुआ। गर्भ में आते ही तीनों लोकों में सुख और प्रकाश फैल गया। मरुदेवी माता ने 14 स्वप्न देखें। नाभि कुलकर ने स्वयं की सहज बुद्धि से कहा, " आपको ऐसा पुत्र होगा जो महान कुलकर बनेगा।" वास्तव में गर्भस्थ जीव भविष्यमें तीर्थंकर होने वाला था। भगवान के च्यवन और गर्भधारण से इन्द्रों के आसन चलायमान हुए। अवधिज्ञान से इसका कारण जानकर सभी इन्द्र मरुदेवी माता के पास पहुँचे और 14 स्वप्नों का सही अर्थ बताकर कहा, "आपके गर्भ में जो जीव है, वह 14 राजलोक का स्वामी और तीर्थंकर होगा।"

गर्भ के प्रभाव से मरुदेवी के शरीर की शोभा, कांति और लावण्य बढ़ने लगे। नाभिराय की ऋद्धि, यश और प्रतिष्ठा भी बढ़ने लगी। गर्भकाल पूर्ण होने पर फाल्गुन वदी अष्टमी के दिन उत्तराषाढ़ा नक्षत्र में मरुदेवी की कुक्षि से एक युगल का सुखपूर्वक जन्म हुआ।

तीर्थंकर और माता की शुद्धि (शुचि) 56 दिशाकुमारी देवियों ने की। इन्द्र का आसन चलायमान हुआ, तब अवधिज्ञान से प्रभु का जन्म जानकर 'हरिणैगमैषी' देव ने "सुघोषा" महाघंट बजाकर नाद किया और सभी देव-देवियों को मध्यरात्रि में जन्म महोत्सव में आने का निमंत्रण दिया। मरुदेवी माता को निद्रित कर, भवनपति के 20, वाणवंतर के 32, ज्योतिषी के 2 तथा वैमानिक के 10 - ऐसे कुल 64 इन्द्र अपने-अपने परिवार सहित प्रभु का जन्म महोत्सव मेरु पर्वत पर मनाने आए। (भरत, इरवत और महाविदेह क्षेत्रों में सभी तीर्थंकरों का जन्म महोत्सव इसी प्रकार मध्यरात्रि में मनाया जाता है।)

सौधर्मेन्द्र ने भगवान के हाथ के अंगूठे में विविध अमृतमय रसयुक्त नाड़ियों का संक्रमण किया, जिससे अंगूठा चूसते ही उनकी भूख शांत हो जाए। (क्योंकि

बाल तीर्थंकर माता का स्तनपान नहीं करते हैं, इसलिए यह व्यवस्था प्रत्येक तीर्थंकर के लिए की जाती है।)

प्रभु की जाँघ पर वृषभ का चिह्न था और माताने 14 स्वप्नों में प्रथम स्वप्न ऋषभ का देखा था, इसलिए उनका नाम "ऋषभ" और बालिका का नाम "सुमंगला" रखा गया। जब प्रभु केवल एक वर्ष के थे, तब सौधर्मेन्द्र कर्मभूमि में आदि तीर्थंकर वंश की स्थापना हेतु एक गन्ने का सांठा लेकर आए। बाल ऋषभदेव ने अवधिज्ञान से इन्द्र के मन के भाव जानकर अपना हाथ बढ़ाया और उस गन्ने का सांठा स्वीकारा। इस तरह इक्ष्वाकु वंश की स्थापना हुई।

भगवान का शरीर वज्रऋषभनाराच संघयनवाला तथा समचतुरंस्र संस्थानवाला था। उनका संपूर्ण शरीर सिर से पैर तक अत्यंत सुंदर एवं लक्षणयुक्त था। उनके साथ खेलने कई देव बाल रूप धारण कर आते थे और खेलते थे। अंगूठा चूसने की अवस्था बीतने के बाद ऋषभदेव देवकुरु और उत्तरकुरु नामक अकर्मभूमि से देवो द्वारा लाए गए कल्पवृक्षों के फलों का ही भक्षण करते थे, क्योंकि उस समय सभी लोग फलाहार करते थे। भोजन पकाने हेतु आवश्यक बादर अग्नि का अस्तित्व ही नहीं था और अन्न पकाने की विधि कोई जानता नहीं था। वे क्षीर समुद्र के जल का पान करते थे।

उसी समय, एक अन्य बाल युगल ताड वृक्ष के नीचे खेल रहा था। दुर्भाग्यवश, वृक्ष का एक बड़ा फल बालक पर गिरा और उसकी मृत्यु हो गई। बालिका अकेली रह गई। माता-पिता उसे साथ ले गए और नाम सुनंदा रखा। परंतु माता-पिता भी कुछ ही दिनों में मृत्यु को प्राप्त हुए। अब वह बालिका अकेली होकर इधर-उधर भटकने लगी। तब कुछ युगल उसे कुलपति नाभिराय के पास लाए। नाभिराय ने उसे भगवान ऋषभदेव की भावी पत्नी के रूप में स्वीकार कर लिया।

जब भगवान युवा हुए, तब सौधर्मेन्द्र ने उन्हें विवाह योग्य जानकर सुनंदा और सुमंगला का हाथ ऋषभदेव को सौंपा और उनके विवाह के माध्यम से विवाह की परंपरा का प्रारंभ किया। इस विवाह में अनेक इन्द्र तथा देव-देवियाँ उपस्थित थे। पूर्व संचित कर्म के अनुसार, अनासक्त भाव से भोगों को भुगतते हुए सुमंगला की कुक्षि से युगल संतान - पुत्र भरत और पुत्री ब्राह्मी का जन्म हुआ। सुनंदा की कुक्षि से पुत्र बाहुबली और पुत्री सुंदरी का जन्म हुआ। तत्पश्चात सुमंगला ने क्रमशः 49

युगल पुत्रों (कुल 98 पुत्रों) को जन्म दिया।

तृतीय आरा के अंत से युग परिवर्तन

तृतीय आरा के शेष भाग में अब युगलकाल समाप्त होने को था, अतः कल्पवृक्षों का प्रभाव क्षीण होने लगा। जब कल्पवृक्ष कम फल देने लगे, तब युगलिकों में कषाय की भावना ने जन्म लिया। किसी को रोकने या सुधारने हेतु तीन प्रकार की प्रतिक्रियाएँ होती थीं -

1. हकार: "हाँ, आप गलत कार्य कर रहे हो।"
2. मकार: "नहीं, आप ऐसा कार्य मत करो।"
3. धिक्कार: " आपने गलत कार्य किया, आपको धिक्कार है।"

इस पद्धति से दोषी को सजा दी जाती थी और उसे शर्म आती जिससे सुधार होता, लेकिन समय के साथ यह पद्धति भी निष्प्रभावी होती गई। तब भगवान ऋषभदेव ने अपने अवधिज्ञान से जाना कि अब कर्मभूमि जैसी व्यवस्था की आवश्यकता है। उन्होंने शासन व्यवस्था, सैनिक शक्तियों की स्थापना और एक शासक की आज्ञा का पालन करने की अनिवार्यता की बात सभी को समजाई। नाभिकुलकर की आज्ञा और सर्वसम्मति से भगवान ऋषभ को राजा नियुक्त किया गया। सौधर्म देवलोक के शक्रेन्द्र का आसन चलायमान हुआ। अवधिज्ञान से राज्याभिषेक का समय जानकर उन्होंने विनिता नगरी की रचना की और वहीं ऋषभ राजकुमार का राज्याभिषेक कर उसे राजा बनाया। उस समय भगवान की आयु 20 लाख पूर्व वर्ष थी। वे इस अवसर्पिणी काल के प्रथम राजा बने।

काल के प्रभाव से मनुष्यों के भावों में भी क्लेश आ गया था। इसलिए राज्य की रक्षा हेतु राजा ऋषभ ने मंत्री, सैनिक, घुड़सवार सेना, पैदल सेना, हाथी-दल, रथसेना आदि की नियुक्ति की। उन्होंने गाय, भैंस, बैल आदि पशुओं का पालन और उनका उपयोग करना सिखाया। लोग कच्चा अनाज खाते थे, उसमें से कचरा निकालकर और भिगोकर खाने की प्रणाली सिखाई। एक दिन वृक्ष की डालियाँ रगड़ने से अग्नि उत्पन्न हुई। तब भगवान ने मिट्टी के पात्र बनाकर उसमें पकाकर भोजन बनाना सिखाया। इसी से कुंभार की शिल्पकला का आरंभ हुआ। इसके बाद उन्होंने वस्त्र निर्माणकला, केशकला, चित्रकला इत्यादि पुरुषों की 72 कलाएँ अपने पुत्र भरत को सिखाईं, भरत ने वे कलाएँ अपने भाइयों और पुत्रों को सिखाईं। पुत्री

ब्राह्मी को दाहिने हाथ से 18 प्रकार की लिपियाँ, और पुत्री सुंदरी को बाएँ हाथ से गणित, तौल, माप इत्यादि सिखाया। इस प्रकार स्त्रियों की 64 कलाएँ सिखाई, जिसे दोनों बहनों ने लोगों को सिखाई। यद्यपि ये क्रियाएँ सावद्य हैं, फिर भी कर्म के उदय के अनुसार अपने दायित्व का पालन करने हेतु यह प्रवृत्ति ऋषभ राजा ने की। उसके बाद 1. उग्रकुल - अधिकारी व सेना, 2. भोगकुल - पुरोहित वर्ग, 3. राजकुल - परिवार के सदस्य, 4. क्षत्रियकुल- शेष समाज, इन चार प्रकार के कुल की रचना की। विवाह की परंपरा भी भगवान के विवाह विधि के अनुसार समाज में प्रचलित हुई।

भगवान को वैराग्य की प्राप्ति-

एक बार विनिता नगरी में वसंतोत्सव मनाया जा रहा था। लोगों की मोहलीला, नृत्य, हास्य, गान आदि विकारवर्धक क्रियाओं को देखकर प्रभु चिंतन में डूब गए। पूर्व भव में देव रूप में भुगते हुए देवों के सुख तथा मनुष्य रूप में पालन किया गया चारित्र का उन्हें स्मरण हुआ। मोह के कडवे फल के विचार करते-करते प्रभु को वैराग्य उत्पन्न हुआ और उनमें विरक्त भाव जगा। तब ब्रह्म देवलोक के अंत में स्थित नव लोकांतिक देवों के स्वामी भगवान के पास आए और निवेदन किया: "प्रभु! बहुत समय से भरत क्षेत्र में नष्ट हुए मोक्षमार्गरूप धर्मतीर्थ का पुनः प्रवर्तन करके भव्य जीवों पर उपकार करें। आपने लोकव्यवस्था के माध्यम से सांसारिक उपकार किया, अब धर्मतीर्थ का प्रसार कर परमसुख का मार्ग बताईए।"

राज्य त्याग और वर्षीदान का प्रारंभ-

प्रभु ने अपने पुत्रों को बुलाकर राज्य विभाजित किया- भरत को राजगद्दी सौंपी, शेष 99 पुत्रों को योग्यतानुसार राज्य सौंप दिए। फिर भगवान ने सांवत्सरिक दान- वर्षीदान का शुभारंभ किया। इन्द्र के आदेश से कुबेर देवने जृंभक देवों को भेजा, जिन्होंने वन, बाग, जलाशय, पर्वत, श्मशान आदि में छिपा (निजी स्वामित्व रहित) द्रव्य निकालकर भगवान के भंडार में समर्पित किया।

जिसका भगवान ने दान दिया-

प्रतिदिन एक करोड़ आठ लाख सोने की मुद्राएँ, इस प्रकार एक वर्ष में 388 करोड़ 80 लाख स्वर्ण मुद्राओं का दान किया। (यह वर्षीदान सभी तीर्थंकर करते हैं।)

दीक्षाअंगीकार-

एक वर्ष बाद फाल्गुन वदी अष्टमी, उत्तराषाढ़ा नक्षत्र को शक्रेन्द्र का आसन चलायमान हुआ और उन्हों ने आकर भगवान का दीक्षाभिषेक किया। भगवान 'सुदर्शन' नामक शिबिका में बिराजमान हुए। पहले मनुष्यों ने और फिर देवों ने शिबिका उठाई। 'सिद्धार्थ' नामक उपवन में अशोकवृक्ष के नीचे शिबिका से उतरकर भगवान ने अपने आभूषण और वस्त्र त्याग दिए। इन्द्र ने एक देवदूष्य वस्त्र भगवान के कंधे पर रखा। प्रभु ने चार मुष्टि लोच (केश उखाड़ना) किया। उनके बालों को शक्रेन्द्र ने अपने वस्त्र में ग्रहण किये।

छठ्ठ के तपस्वी ऋषभ ने देवों और मनुष्यों की उपस्थिति में सिद्धों को नमस्कार किया और कहा: "मैं आज से जीवन भर सभी पापकारक प्रवृत्तियों का त्याग करता हूँ।" ऐसा कहते हुए उन्हों ने सामायिक नामक पहला चारित्र (दीक्षा) अंगीकार किया। इस क्षण नारकी के जीवों को क्षणिक शांति प्राप्त हुई। प्रभु के साथ 4,000 राजाओं ने भी अनुकरण करते हुए दीक्षा ली। भगवान को जन्म से ही तीन ज्ञान - मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान प्राप्त तो थे ही और दीक्षा लेते ही चौथा - मनःपर्यवज्ञान प्राप्त हुआ। (यह ज्ञान सभी तीर्थंकरों को दीक्षा लेते ही प्राप्त होता है।) शोकातुर परिवार जन महल लौटे। सभी देव और इन्द्र भी अपने-अपने देवलोक में चले गए।

गौचरी का प्रथम प्रसंग और एक वर्ष का तप-

भगवान ऋषभदेव के साथ कच्छ और महाकच्छ आदि सभी मुनियों ने विहार किया। भगवान ने अब मौन व्रत धारण कर लिया था। छठ्ठ तप के पारणे के दिन वे गौचरी के लिए नगर में पधारें, लेकिन उस समय वे तीसरे आरे के प्रथम साधु थे - अतः लोग गौचरी की विधि से पूर्णतः अनभिज्ञ थे। लोग उन्हें अपने राजा समझकर, उन्हें हाथी, घोड़े, सुंदर कन्याएँ, हीरे-मोती, बहुमूल्य वस्त्र आदि भेंट करते, परंतु किसी ने उन्हें आहार-पानी के लिए नहीं पूछा। इसलिए वे पुनः स्वस्थान लौट आए। उनके साथ अनुकरण कर स्वयं दीक्षा ग्रहण किए अन्य राजायें भी लौट आए।

आहार किए बीना बहुत दिन पसार हो चुके थे। समझ से अज्ञान ऐसे अन्य राजासंतो से भूख की पीड़ा सहन नहीं हो रही थी। राज्य भरत को सौंपा जा चुका था, इसलिए वापस जाना भी संभव नहीं है ऐसा सोचकर वन में उपल्बध फल, कंद, मूल

आदि खाने लगे, वल्कल से (वृक्षों की छाल से) शरीरको ढांकने लगे, जटाएँ रखने लगे इत्यादी प्रवृत्ति करने लगे। यहीं से जटाधारी आदि पाखंडी के 363 भेदों की शुरुआत हुई।

गौचरी प्राप्ति, केवलज्ञान और मोक्ष-

एक वर्ष से भूखे ऋषभदेव, मौनरूप से विचरण करते हुए हस्तिनापुर नगर में पधारे। उस नगर में बाहुबली के पौत्र और सोमप्रभ राजा के पुत्र श्रेयांस कुमार रहते थे। उन्हों ने रात में स्वप्न देखा कि सुनहरा मेरु पर्वत अंशिक रूप से काला हो गया है। इस पर्वतराज को उन्होंने दूध से अभिषेक कर उज्ज्वल किया।

उसी रात उसी नगर में स्थित सुबुद्धि शेठने स्वप्न देखा कि सूर्य से निकले हज़ारों किरणों को श्रेयांस कुमार ने पुनः सूर्य में विलीन कर दिया - जिससे सूर्य और अधिक प्रकाशमान हो गया।

सोमप्रभ राजा ने स्वप्न देखा कि अनेक शत्रुओं से घिरे राजा को उनके पुत्र श्रेयांस की सहायता से विजय प्राप्त हुई। सुबह इन तीनों ने आपस में अपने-अपने स्वप्न की चर्चा की, परंतु स्वप्न का क्या परिणाम होगा उसका कोई निष्कर्ष नहीं निकाल सकें।

इसी समय प्रभु ऋषभदेव, श्रेयांस कुमार के द्वार पर गौचरी के लिए पधारें। श्रेयांस कुमार ने वंदन नमस्कार किये और प्रभु को एकटक देखने लगे। उन्हें लगा - "मैंने इस महापुरुष को पहले कहीं देखा है।" इसी चिंतन में उन्हें जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। उन्होंने देखा कि पूर्वभव में ऋषभदेव वज्रनाभ चक्रवर्ती थे और जब उन्होंने दीक्षा ली थी, तब उनके पीछे उन्होंने भी दीक्षा अंगीकार की थी। इस जन्म में वे मेरे प्रपितामह हैं। ऐसा सोच रहे थे, उसी समय कोई व्यक्ति गन्ने के रस के घड़े भेंटस्वरूप दे गय़ा। जातिस्मरण ज्ञान के कारण गौचरी वहोराने की विधि का स्मरण हो आया, श्रेयांस कुमार ने प्रभु के करपात्र में गन्ने का रस अर्पित किया। इस प्रकार छट्ठ से शुरू हुआ ऋषभदेव के तप का पारणा एक वर्ष पश्चात संपन्न हुआ। तब आकाश में पाँच दिव्य प्रकट हुए: 1. सोने की मुद्राओं की वर्षा, 2. पाँच रंगों के पुष्पों की वर्षा, 3. वस्त्रों एवं ध्वजा का आकाश में लहराना, 4. देव दुंदुभियों का दिव्य नाद, 5. देवों द्वारा 'अहोदानं' का दिव्य घोष।

इसके बाद भगवान 1000 वर्षों तक मौन के साथ अनेक प्रकार के तप और अभिग्रह

करते हुए विचरण करते रहें। प्रभु विनिता नगरी के पुरिमताल उपनगर में शकटमुख उद्यान में ध्यानस्थ हुए। धर्मध्यान की धारा आगे बढती चली। प्रभुने अपूर्वकरण करके, शुक्लध्यान के पायों पर ध्यान करते हुए, पहले मोहनीय कर्म का क्षय किया, फिर ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अंतराय - इन तीनों घातिकर्मों का एकसाथ क्षय कर केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त किया। महा वदी एकादशी के दिन जब चंद्र उत्तराषाढ़ा नक्षत्र में आया तब प्रातः काल प्रभु को तीनों काल के सभी भावों को जानने वाला केवलज्ञान प्रगट हुआ। नारकी जीवों को अल्पकालिक सुख अनुभव हुआ। देवों ने उनका केवलज्ञान महोत्सव मनाया।

राज्य, तप, मोक्ष और शासनकाल-

भगवान ऋषभदेव 20 लाख पूर्व वर्ष तक युवावस्था में रहें, 63 लाख पूर्व वर्ष राज किया, 1000 वर्ष तक छद्मस्थ अवस्था सह एक लाख पूर्व वर्ष तक संयम पालन किया। वे पौष वदी 13 के दिन मोक्ष (निर्वाण) को प्राप्त हुए। तृतीय आरे के 3 वर्ष, 8 मास और 15 दिन शेष थे, तब उन्होंने सिद्धगति को प्राप्त किया।

भगवान ऋषभदेव का धर्म-परिवार-

84 गणधर, 84,000 साधु, 3 लाख साध्वीजी, 3,05,000 श्रावक, 5,54,000 श्राविका, 20,000 केवलज्ञानी, 12,650 मनःपर्यवज्ञानी, 9,000 अवधिज्ञानी, 4,750 चौदा पूर्वधर साधु थे। उनका शासन 50 लाख क्रोड सागरोपम (अर्ध चतुर्थ आरा) तक चला। इस काल में असंख्य साधु-साध्वियों ने मोक्ष प्राप्त किया।

अपेक्षित प्रश्न :

1. भगवान ऋषभदेव का जन्म कहाँ और कब हुआ?
2. जन्माभिषेक महोत्सव का वर्णन कीजिए।
3. तीर्थंकर के अंगूठे में कौन-सी शक्ति होती है?
4. इक्ष्वाकु वंश की स्थापना कैसे हुई?
5. ऋषभदेव बाल्य एवं युवावस्था में कौन-सा आहार करते थे?
6. ऋषभदेव ने सुनंदा को पत्नी क्यों बनाया?
7. हकार, मकार और धिक्कार का क्या अर्थ है?

8. भगवान ने किसे कौन-कौन सी कलाएँ सिखाई? कितने और कौन से कुल की रचना की?
9. वैराग्य के समय प्रभु के पास कौन आया और क्या निवेदन किया?
10. वर्षीदान क्या होता है? ऋषभदेव ने कितना दिया?
11. जिन लोगों ने ऋषभदेव के साथ दीक्षा ली, वे क्या करते थे?
12. भगवान को प्रथम आहार कैसे और किसके हाथों से मिला? किसकी वृष्टी हुई?
13. भगवान ऋषभदेव का धर्म-परिवार लिखिए।
14. भगवान का शासन कब तक चला?

2) कामदेव श्रावक

(श्री उपासक दशांग सूत्र)

चंपानगरी में कामदेव नामक एक श्रेष्ठ गृहस्थ (गाथापति) रहते थे। उनकी पत्नी का नाम भद्रा था। कामदेव के पास 6 करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ भंडार में, 6 करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ व्यापार में, और 6 करोड़ स्वर्ण मुद्राओं की अन्य वस्तुए थी।

उनके पास 60,000 गायों का विशाल गौकुल था। वे अत्यंत धनाढ्य और सुखी थे। अनेक राजाओं एवं व्यापारियों के लिए सलाहकार, निर्णायक और सम्माननीय स्थान रखते थे। वे परिवार के मुखिया समान और हर कार्य में अग्रणी थे।

भगवान महावीर का आगमन और श्रावकधर्म अंगीकार

एक बार श्रमण भगवान महावीर स्वामी चंपानगरी के पूर्णभद्र चैत्य में पधारे। चंपा के राजा जितशत्रु और कामदेव, दोनों ही पदयात्रा कर भगवान के दर्शन एवं धर्म श्रवण हेतु आए। भगवान को तीन प्रदक्षिणा और वंदन कर, धर्मदेशना सुनकर अत्यंत आनंदित हो गए। हर्षित होकर भगवान से बोले: "हे भगवंत! मैं निर्ग्रंथ प्रवचन में श्रद्धा, विश्वास, रुचि और आदर रखता हूँ। परंतु गृहत्याग कर दीक्षा लेने असमर्थ हूँ। अतः मैं आपसे पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत ऐसे कुल बारह व्रतों को ग्रहण करना चाहता हूँ।"

फिर कामदेव और उनकी पत्नि भद्रा, दोनों ने भगवान महावीर से बारह व्रत धारण किए। तत्पश्चात कामदेव श्रावक नव तत्त्वों के ज्ञाता बन गए। साधु भगवंतो को 14 प्रकार के निर्दोष दान देकर धर्ममय जीवन व्यतीत करने लगे। धर्म पालन

करते-करते 14 वर्ष हो गए, एक रात कामदेव धर्म-जागरण कर रहे थे। उन्हें विचार आया कि अब संसार-कार्य से निवृत्ति ले लेनी चाहिए। इसलिए उन्होंने अपना सर्व व्यापार बडे पुत्र को सौंप दिया।

निवृत कामदेव अब ज्यादा से ज्यादा धर्म करने लगे। अपनी पौषधशाला में निवास कर, आभूषण, पुष्पमाला, विलेपन, शस्त्र आदि समस्त उपधियों का त्याग कर, पौषध व्रत का पालन करते हुए अपने जीवन का समय व्यतीत करने लगे।

एक रात, पौषधशाला में उन्हों ने श्रावक की प्रतिमा धारण की थी, तब एक मायावी मिथ्यात्वी देव पिशाच रूप में वहां प्रगट हुआ। वह भयंकर पिशाच, हाथ में तलवार, विकराल रूप और गर्जना करते हुए बोला: "हे कामदेव! तू अभागा है! अब तेरा अंत समीप है। तू बड़ा धर्मात्मा बन रहा है? तुझे मोक्ष में जाना है न ? तूने मेरे जैसे शक्तिशाली देव की उपेक्षा की है? तुझे नहीं पता, तेरी धर्म-साधना व्यर्थ है। तू अपने पाखंड को छोड़ दे, तू अपनी जीद नहीं छोड़ेगा तो मैं तलवार से तेरे टुकड़े-टुकड़े कर दूँगा! असहय वेदना को सहते-सहते तेरी अकाल मृत्यु होंगी।"

पिशाच का विकराल रूप, भयानक गर्जना और कर्कश वचन को सुनकर कामदेव डरे नहीं, एवं जरा भी विचलित नहीं हुए, किंतु शांतिपूर्वक धर्मध्यान में लीन रहे। देव ने दो-तीन बार अपनी कर्कश आवाज में धमकी दी, लेकीन कामदेवने उनकी उपेक्षा की। देव ने जब देखा कि उसकी धमकी बेकार गई है, तो गुस्से में आकर तलवार से कामदेव के शरीर के टुकड़े कर दिए।

फिर देव ने हाथी रूप बनाया। अपनी सूंढ से कामदेव को उठाकर आकाश में फेंका- नीचे गिरते हुए कामदेव को अपने दंतशूल में चुभोकर जमीन पर गिरा कर अपने पैरों से तीन बार रगड़ा। कामदेव स्थिर रहें। वह हाथी बोला: "अब तू आर्तध्यान और असहनीय पीड़ा से अकाल में जीवन रहित हो जाएगा, मर जाएगा।" परंतु कामदेव धर्म में अडिग रहे, उनके भावों में कोई बदलाव नहीं आया।

सर्प रूप से अंतिम प्रयास और कामदेव की विजय

अब देव का धैर्य खतम होनेमें था। इसलिए पौषधशाला से बहार निकल कर सर्प रूप में वापस आया। वह सर्प तीव्र विषैला, काले रंग का, क्रूर स्वरूप था। आँखें लाल, विष और क्रोध से भरी हुई थी। कामदेव के शरीर पर चढ कर पीछे से उसने गले में पूँछ लपेटी और तीक्ष्ण दंत से छाती पर डंस मार दिया। श्रावक को असह्य वेदना हुई - लेकिन जैन धर्म के उपासक श्रावक धर्म पर अडिग और अविचलित

रहें।

महावीर उपासक श्रावक की द्रढता के सामने आखिर देव थक-हारकर अपना वास्तविक स्वरूप प्रगट करता है। आकाश में अपना प्रकाश फैलाते हुए, जमीन से ऊपर रहकर कामदेव को उसने कहा: "हे कामदेव! आप धन्य हो, कृतार्थ हो, आपका मानवभव सफल हुआ, आपको निर्ग्रंथ प्रवचन फला है ! आपकी धर्मनिष्ठा की प्रशंसा देवलोक में शक्रेन्द्रने करते हुए कहा कि - 'इस समय भरतक्षेत्र के चंपानगरी में कामदेव श्रावक पौषधशाला में पडिमा धारण कर धर्म चिंतन कर रहे हैं, उनकी धर्मदृढ़ता बहोत ही मजबूत है। कोई देव या दानव उन्हें विचलित नहीं कर सकता।' इस लिए मैं आपकी परीक्षा ले रहा था। मैं क्षमा चाहता हूँ और प्रतिज्ञा करता हूँ कि भविष्य में किसी भी धर्मसाधक के साथ ऐसा क्रूर व्यवहार नहीं करूंगा।"

महावीर स्वामी द्वारा सम्मान-

कामदेव ने उपसर्ग समाप्त हुआ, जानकर ध्यान पूर्ण कर लिया। उस समय श्रमण भगवान महावीर चंपानगरी के बाहर पूर्णभद्र उपवन में पधारें। कामदेव को यह समाचार मिलते ही उसने सोचा कि भगवान को वंदन नमस्कार करके वापस आने पर पारणा करूंगा। वे भगवान विराजमान थे, वहाँ आए। उन्हें वंदन नमस्कार किए। भगवानने उपदेश देते हुए कहा, "हे कामदेव! क्या गत रात्रि को एक देव आपको पिशाच, हाथी और सर्प का रूप धारण कर उपसर्ग दे रहा था?" कामदेव ने कहा- "हाँ, प्रभु! आप सत्य कह रहे हो।"

भगवान ने अपने साधु-साध्वीजी को संबोधन करते हुए कहा: "हे आर्यो! इस कामदेव श्रावक ने गृहस्थावास में रहते हुए मायावी देव के परिषह, उपसर्गों को सहन कर धर्मश्रद्धा की दृढ़ता का अनुपम परिचय दिया है। आप तो साधु हो, निर्ग्रंथ प्रवचन के जानकार हो, संसार के त्यागी हो, आप सबको भी देव, मनुष्य और तिर्यंच से आने वाले उपसर्गों को पूर्ण सहिष्णुता से सहन करते हुए अपने चारित्र में कामदेव की समान दृढ़, अतुट रहना चाहिए।"

इस तरह भगवान ने सभा में कामदेव श्रावक की प्रशंसा की।

कामदेव का अंतिम धर्ममार्ग-

बाद में कामदेव ने घर लौटकर श्रावक की अन्य पडिमायें धारण कीं। उन्होंने एक माह का संलेखन संथारा ग्रहण किया। 20 वर्षों तक श्रावक धर्म का पालन

किया। फिर काल करके सुधर्म देवलोक में चार पल्य की स्थिति वाले देव हुए। भविष्य में मनुष्य बनकर अधूरी साधना पूर्ण कर मोक्ष प्राप्त करेंगे।

धन्य हैं कामदेव श्रावक की श्रद्धा को और दृढ़ता को...!

अपेक्षित प्रश्न:

१. कामदेव श्रावक की समृद्धि का वर्णन कीजिए। 2. भगवान से कामदेव ने श्रावकधर्म किस प्रकार अंगीकार किया - विस्तार से लिखिए। 3. कामदेव श्रावक को किसका उपसर्ग आया? उसने किन-किन रूपों में आकर कैसे-कैसे कामदेव को विचलित करने का प्रयास किया? 4. उपसर्ग की परीक्षा में कौन विजयी हुआ? 5. परीक्षा करने के बाद देव ने कामदेव की क्या प्रशंसा की? 6. भगवान महावीर ने कामदेव श्रावक की कौन से शब्द प्रयोग कर प्रशंसा की ? 7. कामदेव श्रावक मृत्यु के पश्चात कहाँ गए? वे मोक्ष कब और कहाँ से प्राप्त करेंगे?

दो कछुए

(श्री ज्ञाताधर्म कथा सूत्र)

ज्ञान जीवन को पारस बनाता है। जिसका दूसरा नाम बनारस है ऐसी थी वैभवशाली वाराणसी नगरी। कई तरह से आकर्षक उस नगर की सीमा के बाहर बहती थी गंगा महा नदी, और उसके ईशान कोन में स्थित था एक जलाशय (द्रह)। यह जलाशय सदैव शीतल जल से परिपूर्ण, विविध प्रकार के कमलों से शोभायमान था। उसमें जलचर मछली, मगर, ग्राह और कछुए आदि जलचर प्राणी जीवन सुखपूर्ण पसार कर रहे थे। जल ही उनका जीवन था। इस तरह यह द्रह रमणीय, दर्शनीय, अत्यंत सुंदर, आनंदप्रद और सभी का आकर्षण केंद्र बन चुका था।

पापी लोमडी और दो कछुए

उस जलाशय के पास ही एक मालुका कच्छ था। वहाँ दो पापी लोमडियाँ रहती थी। वे क्रोधी, कपटी, पापाचारी और मांसाहारी थी। रात्रि में मांस हेतु निकलती थी, दिन में छिपकर रहती थी।

एक समय सूर्यास्त होते संध्या हुई। लोगों का आवन-जावन कम हुआ तब, दो कछुए भोजन की तलाश में जलाशय से बाहर निकले और इधर-उधर घूमने लगे।

वहीं दूसरी ओर, वे दो लोमडी भी अपने मालुका कच्छ से बाहर निकली और उस जलाशय के आसपास घूमने लगी। एक तो पापों के उदय से तिर्यंच भव

मिला और उसमें भी ऐसी मांसाहार वृत्ति...!

इस दोनों पापी लोमडी ने दो कछुओं को देखा, और जहाँ दो कछुए थे, वहाँ निकट आ गई। कछुए भी अपनी दृष्टि से इस पापी लोमडी को देखकर डर गए। तुरंत ही अपने अंगों को अपनी ढाल के भीतर छिपा लिया और स्थिर हो गए।

पहले कछुए की भूल और मृत्यु

लोमडियाँ तुरंत ही कछुएँ थे वहाँ आकर कछुएँ को हिलाने लगी। नाखून और दाँतों से शरीर को काटने की कोशिश की, किंतु कछुएँ की ढाल को थोडी भी तोड नहीं पाई।

कछुएँ के लिए ढाल उसके शरीर की रक्षा करने वाला कवच है। जब तक ढाल में रहते है, तब तक सब सुरक्षित। दोनों लोमडी ने दो-तीन बार प्रयास किए। बहुत मेहनत, कडा परिश्रम करने के बावजूद उनका सुरक्षा कवच तोडने में असफल रहें तब अंत में थक कर वहाँ से एकांत में जाकर स्थिर हो कर खडे रह गई।

अब दोंनो कछुएँ में से एक कछुए ने सोचा- "दोनों लोमडी चली गई हैं।" ऐसा समझ कर एक पैर ढाल के बाहर निकाला। ये दोनों लोमडी ने देख लिया कि तुरंत ही त्वरित गति से जहाँ कछुआ था, वहाँ गई और कछुए का पैर, नाखून और दाँत से तोडकर, चबा कर, मांस एवं रक्त पिया। फिर देखा तो कछुआ फिर से ढाल के अंदर चला गया। फिर से दोनों लोमडी दूर चली गई।

कुछ समय बाद उस कछुए ने सोचा कि लोमडियाँ चली गई है। इसलिए दूसरा पैर बाहर निकाला और तुरंत ही लोमडियाँ आ गई और दूसरा पैर भी चबा डाला। इस तरह क्रमशः पीछे के दोनों पैर और अंत में सिर भी बाहर निकाला और पूरा कछुआ धीरे-धीरे चबा लिया गया। वह जीवनरहित हो गया।

दूसरे कछुए की बुद्धिमत्ता और रक्षा-

पापी लोमडियाँ जहाँ दूसरा कछुआ था, वहाँ पहुँच गई और उस कछुए को हर दिशा से उलट-पलट कर तोड़ने के लिए दाँतो का, नाखून का प्रयास किया, परंतु वे चमड़ी भेदने में असमर्थ रह गई। इस तरह दो-तीन बार प्रयास किए, अंत में थक-हार कर वे जहाँ से आई थी, वहाँ वापस लौट गई।

काफी समय बाद, दूसरे कछुए ने सबसे पहले अपना सिर बाहर निकाल कर, चारों दिशा में देख लिया, फिर चारों पैर एक साथ ढाल से बाहर निकाले और तुरंत जलाशय में पहुँच गया और अपने सब साथियों के साथ मिल कर, सुख पूर्वक

जीवन व्यतीत करने लगा।

सारांश और बोध-

"पहले खोलो आँख, फिर फैलाओ पंख..." जो साधक साधना करने हेतु मिली अपनी पाँचों इन्द्रियों पर संयम नहीं रख पाता, जैसे मन मर्जी हो, वैसे वर्ताव करता है या इन्द्रियाँ जो चाहती है, वह देता रहता है जैसे कि आँखें विकारपूर्ण दृश्य देखें, कान मधुर गीतों में रत हो जाएँ, जीव्हा से अनियंत्रित बोलें,इस तरह असंयमित रहे तो निंदनीय हो कर कर्मबंधन से युक्त हो कर संसार का परिभ्रमण बढा देता है। जो साधक अपनी इन्द्रियों को संयम की ढाल में रखता है, मन को बाहर नहीं भटकने देता अर्थात् पापकर्म में इन्द्रियाँ और मन लिप्त न होने देने से आत्मसंयम की ढाल में उसे सुरक्षित रखते है। जरूरत हो वहाँ समिति में रहे अर्थात् जागृति और उपयोगपूर्वक प्रवृत्ति करे, बाकी समय गुप्ति अर्थात् प्रवृत्ति से निवृत्ति में रहे, यही साधक की साधना है।

जो साधक अष्ट प्रवचन माता की शरण में अपना जीवन समर्पित करता है, वही मोक्षपद का अधिकारी बनता है। गुप्ति से ही समाधि और सद्दगति मिलती है।

अपेक्षित प्रश्न :-

१. किस नगरी में द्रह था? वहाँ कौन रहता था और वे कैसे थे?

2. लोमडीओं ने कछुए का आहार किस प्रकार किया?

3. किस कछुए का जीवन समाप्त हुआ? क्यों?

4. कौन-सा कछुआ बच गया और कैसे?

5. इस कथा का सारांश लिखिए।

6. साधक किसे कहते हैं?

7. समिति और गुप्ति में कब रहना चाहिए?

8. साधक की साधना क्या है?

1.साधु वंदणा (1 थी 77 कडी)

नमूं अनंत चौबीसी, ऋषभादिक महावीर।
इण आर्य क्षेत्र मां, घाली धर्म नी सीर ।।1।।

महाअतुल-बली नर, शूर-वीर ने धीर।
तीरथ प्रवर्तावी, पहुंचा भव-जल-तीर ।।2।।

सीमंधर प्रमुख, जघन्य तीर्थंकर बीस।
छे अढ़ी द्वीप मां, जयवंता जगदीश ।।3।।

एक सौ ने सत्तर, उत्कृष्ट पदे जगीश।
धन्य मोटा प्रभुजी, तेह ने नमाऊँ शीश ।।4।।

केवली दोय कोड़ी, उत्कृष्टा नव कोड़।
मुनि दोय सहस्त्र कोड़ी, उत्कृष्टा नव सहस्त्र कोड़ ।।5।।

विचरे छे विदेहे, मोटा तपसी घोर।
भावे करि वंदूं, टाले भव नी खोड़ ।।6।।

चौबीसे जिन ना, सगला ही गणधार।
चौदह सौ बावन, ते प्रणमूँ सुखकार ।।7।।

जिनशासन-नायक, धन्य श्री वीर जिनंद।
गौतमादिक गणधर, वर्तायो आनंद ।।8।।

श्री ऋषभदेव ना, भरतादिक सौ पूत।
वैराग्य मन आणी, संयम लियो अद्भूत ।।9।।

केवल उपजाव्यूं, करी करणी करतूत।
जिनमत दीपावी, सगला मोक्ष पहुंत।।10।।

श्री भरतेश्वर ना, हुआ पटोधर आठ।
आदित्यजशादिक, पहुंच्या शिवपुर-वाट।।11।।

श्री जिन-अंतर ना, हुआ पाट असंख।
मुनि मुक्ति पहुंच्या, टालि कर्म ना वंक।।12।।

धन्य कपिल मुनिवर, नमी नमूं अणगार।
जेणे तत्क्षण त्याग्यो, सहस्त्र-रमणी-परिवार।।13।।

मुनिबल हरिकेशी, चित्त मुनीश्वर सार।
शुद्ध संयम पाली, पाम्या भव नो पार।।14।।

वलि इक्षुकार राजा, घर कमलावती नार।
भगू ने जशा, तेहना दोय कुमार।।15।।

छये छती ऋद्धि छांडी, लीधो संयम-भार।
इण अल्पकाल मां, पाम्या मोक्ष-द्वार।।16।।

वलि संयति राजा, हिरण-आहिडे जाय।
मुनिवर गर्दभाली, आण्यो मारग ठाय।।17।।

चारित्र लेई ने, भेट्या गुरु ना पाय।
क्षत्रीराज ऋषीश्वर, चर्चा करी चित लाय।।18।।

वलि दशे चक्रवर्ती, राज्य-रमणी ऋद्धि छोड़।
दशे मुक्ति पहुंच्या, कुल ने शोभा च्होड़।।19।।

इस अवसर्पिणी काल मां, आठ राम गया मोक्ष।
बलभद्र मुनीश्वर, गया पांचमे देवलोक ।।20।।

दशार्णभद्र राजा, वीर वांद्या धरि मान।
पछि इंद्र हटायो, दियो छःकाय अभयदान ।।21।।

करकंडू प्रमुख, चारे प्रत्येक बुद्ध।
मुनि मुक्ति पहुंच्या, जीत्या कर्म महाजुद्ध ।।22।।

धन्य मोटा मुनिवर, मृगापुत्र जगीश।
मुनिवर अनाथी, जीत्या राग ने रीश ।।23।।

वलि समुद्रपाल मुनि, राजेमती रहनेम।
केशी ने गौतम, पाम्या शिवपुर-क्षेम ।।24।।

धन विजयघोष मुनि, जयघोष वलि जाण।
श्री गर्गाचार्य, पहुंच्या छै निर्वाण ।।25।।

श्री उत्तराध्ययन मां, जिनवर कर्या बखाण।
शुद्ध मन से ध्यावो, मन में धीरज आण ।।26।।

वलि खंदक संन्यासी, राख्यो गौतम-स्नेह।
महावीर समीपे, पंच महाव्रत लेह ।।27।।

तप कठिन करीने, झौंसी आपणी देह।
गया अच्युत देवलोके, चवि लेसे भव-छेह ।।28।।

वलि ऋषभदत्त मुनि, सेठ सुदर्शन सार।
शिवराज ऋषीश्वर, धन्य गांगेय अणगार ।।29।।

शुद्ध संयम पाली, पाम्या केवल सार।
ये चारे मुनिवर, पहुंच्या मोक्ष मोझार।।30।।

भगवंत नी माता, धन-धन सती देवानंदा।
वलि सती जयंती, छोड़ दिया घर-फंदा।।31||

सति मुक्ति पहुंच्या, वलि ते वीर नी नंद।
महासती सुदर्शना, घणी सतियों ना वृंद।।32।।

वलि कार्तिक सेठे, पडिमा वही शूर-वीर।
जीम्यो मोरां ऊपर, तापस बलती खीर।।33।।

पछी चारित्र लीधो, मित्र एक सहस आठ धीर।
मरी हुओ शक्रेन्द्र, चवि लेसे भव-तीर।।34।।

वलि राय उदायन, दियो भाणेज ने राज।
पछी चारित्र लेईने, सार्या आतम-काज।।35।।

गंगदत्त मुनि आनंद, तारण-तरण जहाज।
मुनि कौशल रोहो, दियो घणां ने साज।।36।।

धन्य सुनक्षत्र मुनिवर, सर्वानुभूति अणगार।
आराधक हुई ने, गया देवलोक मोझार।।37।।

चवि मुक्ति जासे, वलि सिंह मुनीश्वर सार।
बीजा पण मुनिवर, भगवती मां अधिकार।।38।।

श्रेणिक नो बेटो, मोटो मुनिवर मेघ।
तजी आठ अंतेउरी, आण्यो मन संवेग।।39।।

वीर पे व्रत लेई ने, बांधी तप नी तेग।
गया विजय विमाने, चवि लेसे शिव-वेग ।।40।।

धन्य थावच्चा पुत्र, तजी बतीसो नार।
तेनी साथे निकल्या, पुरुष एक हजार ।।41।।

शुकदेव संन्यासी, एक सहस्त्र शिष्य लार।
पांच-सौ से शेलक, लीधो संयम-भार ।।42।।

सब सहस अढ़ाई, घणा जीवों ने तार।
पुंडरिकगिरि ऊपर, कियो पादोपगमन संथार ।।43।।

आराधक हुई ने, कीधो खेवो पार।
हुआ मोटा मुनिवर, नाम लियां निस्तार ।।44।।

धन्य जिनपाल मुनिवर, दोय धन्ना हुआ साध।
गया प्रथम देवलोके, मोक्ष जासे आराध ।।45।।

श्री मल्लीनाथ ना छह मित्र, महाबल प्रमुख मुनिराय।
सर्वे मुक्ति सिधाव्या, मोटी पदवी पाय ।।46।।

वलि जितशत्रु राजा, सुबुद्धि नामे प्रधान।
पोते चारित्र लई ने, पाम्या मोक्ष-निधान ।।47।।

धन्य तेतली मुनिवर, दियो छ काय अभयदान।
पोटिला प्रतिबोध्या, पाम्या केवलज्ञान ।।48।।

धन्य पांचे पांडव, तजी द्रौपदी नार।
थेवरां नी पासे, लीधो संयम-भार ।।49।।

श्री नेमि वंदन नो, एहवो अभिग्रह कीध।
मास-मासखमण तप, शत्रुंजय जई सिद्ध ।।50।।

धर्मघोष तणा शिष्य, धर्मरुचि अणगार।
कीडियों नी करुणा, आणी दया अपार ।।51।।

कड़वा तूंबा नो, कीधो सगलो आहार।
सर्वार्थसिद्ध पहुंच्या, चवि लेसे भव-पार ।।52।।

वलि पुंडरिक राजा, कुंडरिक डिगियो जाण।
पोते चारित्र लेई ने, न घाली धर्म मां हाण ।।53।।

सर्वार्थसिद्ध पहुंच्या, चवि लेसे निर्वाण।
श्री ज्ञातासूत्र मां, जिनवर कर्या बखाण ।।54।।

गौतमादिक कुंवर, सगा अठारे भ्रात।
सब अंधकविष्णु-सुत, धारिणी ज्यांरी मात ।।55।।

तजी आठ अंतेउर, काढ़ी दीक्षा नी बात।
चारित्र लेई ने, कीधो मुक्ति नो साथ ।।56।।

श्री अनीकसेनादिक, छहे सहोदर भाय।
वसुदेव ना नंदन, देवकी ज्यांरी माय ।।57।।

भद्दिलपुर नगरी, नाग गाहावई जाण।
सुलसा-घर वधिया, सांभली नेम नी वाण ।।58।।

तजी बत्तीस-बत्तीस अंतेउर, निकलिया छिटकाय।
नल कूबेर समाना, भेट्या श्री नेमि ना पाय ।।59।।

करी छठ-छठ पारणा, मन में वैराग्य लाय।
एक मास संथारे, मुक्ति विराज्या जाय ।।60।।

वलि दारुक सारण, सुमुख-दुमुख मुनिराय।
वलि कुंवर अनाधृष्ट, गया मुक्ति-गढ़ मांय ।।61||

वसुदेव ना नंदन, धन-धन गजसुकुमाल।
रूपे अति सुंदर, कलावन्त वय बाल ।।62।।

श्री नेमी समीपे, छोड्यो मोह-जंजाल।
भिक्षु नी पडिमा, गया मसाण महाकाल ।।63।।

देखी सोमिल कोप्यो, मस्तक बांधी पाल।
खेरा नां खीरा, शिर ठविया असराल ।।64।।

मुनि नजर न खंडी, मेटी मन नी झाल।
परीषह सही ने, मुक्ति गया तत्काल ।।65।।

धन जाली मयाली, उवयाली आदि साध।
शांब ने प्रद्युम्न, अनिरुध साधु अगाध ।।66।।

वलि सतनेमि, दृढ़नेमि, करणी कीधी निर्बाध।
दशे मुक्ति पहुंच्या, जिनवर-वचन आराध ।।67।।

धन अर्जुनमाली, कियो कदाग्रह दूर।
वीर पै व्रत लई ने, सत्यवादी हुआ शूर ।।68।।

करी छठ-छठ पारणा, क्षमा करी भरपूर।
छह मासां मांही, कर्म किया चकचूर ।।69।।

कुँवर अइमुत्ते, दीठा गौतम स्वाम।
सुणि वीर नी वाणी, कीधो उत्तम काम ।।70।।

चारित्र लेई ने, पहुंत्या शिवपुर-ठाम।
धुर आदि मकाई, अन्त अलक्ष मुनि नाम ।।71।।

वलि कृष्णराय नी, अग्रमहिषी आठ।
पुत्र-बहु दोय, संच्या पुण्य ना ठाठ ।।72।।

जादव-कुल सतियां, टाल्यो दुःख उचाट।
पहुंची शिवपुर मां, ए छे सूत्र नो पाठ ।।73।।

श्रेणिक नी राणी, काली आदिक दश जाण।
दशे पुत्र-वियोगे, सांभली वीर नी वाण ।।74।।

चंदनबाला पै, संयम लेई हुई जाण।
तप कर देह झौंसी, पहुंची छै निर्वाण ।।75।।

नंदादिक तेरह, श्रेणिक नृप नी नार।
सगली चंदनबाला पै, लीधो संयम-भार ।।76।।

एक मास संथारे, पहुंची मुक्ति मंझार।
ए नेवुं जणा नो, अंतगड मां अधिकार ।।77।।